दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० 2499 तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष 29 अंक नं० 6

अध्यात्म-पद

अंतर उज्जल करना रे भाई ! ॥टेक॥

कपट कृपान तजै नहिं तबलौं, करनी काज न सरना रे॥1॥

जप तप तीरथ जज्ञ व्रतादिक, आगम अर्थ उचरना रे।
विषय-कषाय कीच नहिं धोयो, यों ही पचि पचि मरना रे॥2॥

बाहिर भेष क्रिया उर शुचिसों, कीये पार उतरना रे।
नाहीं है सब लोक-रंजना, ऐसे वेदन वरना रे॥3॥

कामादिक मनसौं मन मैला, भजन किये क्या तिरना रे।
'भूधर' नील-वसन पर कैसैं, केसर रंग उछरना रे॥4॥

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

अक्टूबर : 1973] वार्षिक मूल्य 4) रुपये (342) एक अंक 35 पैसा [आश्विन : 2499

शीघ्र पधारो प्रभु! परमागम-मंदिर में

हे वीरनाथ भगवान! आपका सुंदर मार्ग हमारे महाभाग्य से पूज्य गुरुदेव द्वारा हमें प्राप्त हुआ... आपके मार्ग में प्रवाहित वीतरागी आनंद के प्रवाह से हम पावन हुए। समंतभद्रस्वामी ने यथार्थ कहा है कि मिथ्यात्वीचित्त आपको नहीं पूज सकता, सम्यक्त्वी ही आपको पूज सकता है। हे प्रभु! आपकी सर्वज्ञता, आपकी वीतरागता और शुद्धात्मा के आनंदस्वभाव से पूर्ण आपका उपदेश—उसकी महानता को जो जानता है, वह तो आपके मार्ग पर चलने लगता है और उसके चित्त में आप निवास करते हैं, वही आपको पूजता है। आपकी महानता को जो नहीं पहिचान सकता, वह आपको कैसे पूज सकता है? प्रभो! हमने तो आपको पहिचाना है, और हम आपके पुजारी हैं।

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

संपादक : ब्र० हरिलाल जैन 卐 सह-संपादक : ब्र० गुलाबचंद जैन

अक्टूबर : 1973 ☆ आश्विन : वीर नि० सं० 2499, वर्ष 29 वाँ ☆ अंक : 6

भगवान महावीर

प्रभो! आपका यह अवतार, धर्म-अवतार था; मोक्ष की साधना के लिये ही आपका अवतार था। आपने मोक्ष को साधकर हमारे लिये भी मोक्ष का मार्ग खोल दिया। वर्तमान में भी मोक्षसुख देनेवाला आपका शासन जयवंत प्रवर्तता है। जहाँ आपका शासन वर्त रहा है, वहाँ आप विद्यमान ही हैं, आपका विरह हमें नहीं है।

आपका शासन अर्थात्?—जगत के समस्त जीव-अजीव पदार्थों का ज्ञान कराके, उसमें सर्वोत्कृष्ट महिमावंत आत्मतत्त्व की अगाध महिमा समझाकर, उसका स्वाश्रित वेदन करानेवाला और पराश्रित दु:खभावों को छुड़ानेवाला हितशासन—वह आपका शासन है, वह आपका वीरमार्ग है... वीर मुमुक्षु आज भी आपके उस मार्ग पर चल रहे हैं, मुमुक्षुओं के अंतर में आपका मार्ग शोभायमान है।

प्रभो! आपके निर्वाणगमन का 2500 वाँ वर्ष प्रारंभ हो चुका है... हम आत्मा में सम्यक्त्वादि चैतन्यदीप प्रज्वलित करके आपके निर्वाण का मंगल-उत्सव मनाने के लिये कृतसंकल्प हैं।

भगवान महावीर द्वारा प्ररूपित मार्ग, उस मार्ग में मोक्ष के साधक जीवों का सुंदर वर्णन

महावीर भगवान के निर्वाण का 2500वाँ वर्ष प्रारंभ हो चुका है। इस अवसर पर भगवान द्वारा प्ररूपित मोक्ष का मार्ग दर्शानेवाला यह प्रवचन मुमुक्षुओं को आनंदित करेगा। भगवान महावीर के कहे हुए आत्मा के सत्यस्वरूप को जानकर निर्वाणमार्ग की साधना करना ही भगवान के मोक्ष का सच्चा महोत्सव है। भगवान के कहे हुए मार्ग को जाने बिना मोक्ष का सच्चा उत्सव कभी नहीं हो सकता। भगवान कहते हैं कि हे भव्य! परभावों से भिन्न आनंदस्वरूप आत्मा जगत में प्रसिद्ध है... ऐसे जगत्प्रसिद्ध सत्य को तू जान... तुझे प्रसन्नता होगी... आनंद होगा।

[श्री नियमसार, गाथा 45-46 पर पूज्य स्वामीजी का प्रवचन]

☆★☆★☆★☆★☆★☆★

मुमुक्षु जीव ने निर्णय किया है कि मैं ज्ञानतत्त्व हूँ; मेरा ज्ञान आकुलतारहित, स्वयं आनंदरस में लीन है। अहा, ऐसे ज्ञानतत्त्व की अनुभूति हुई, वहाँ जगत में कोई भी पदार्थ उसे अनुकूल या प्रतिकूल है ही कहाँ? अमुक अनुकूल संयोग हो तो ज्ञान में हर्ष हो और प्रतिकूल संयोग हो तो ज्ञान में खेद हो—ऐसा ज्ञान में नहीं है। संयोगों से पार तथा हर्ष-शोक से भी पार ऐसा ज्ञानस्वरूप प्राप्त करके सहज ज्ञानचेतनारूप से वर्तते हुए धर्मात्मा मुक्त ही हैं।—मोक्ष के साधक जीव ऐसे होते हैं।

बाह्य पदार्थों को जानते हुए, ज्ञान की महिमा को भूलकर उन बाह्य पदार्थों के प्रति अज्ञानी को उल्लास आ जाता है, तथा उनके राग में उसे आनंद लगता है परंतु उसमें तो दुःख ही है। ज्ञान को भूलकर ऐसे दुःखवेदन में जीव ने अनंतकाल बिताया, परंतु भेदज्ञान द्वारा जहाँ अपने ज्ञानतत्त्व का निर्णय करके उसका अनुभव किया, वहाँ अपूर्व मोक्षसुख का स्वाद आया;

उसे प्रगट हुआ चैतन्यभाव रागरहित मुक्त ही है। चौथे गुणस्थानवाले सम्यग्दृष्टि को रागरहित जो चैतन्यभाव (सम्यग्दर्शनादि) हैं, वे भी निर्ग्रंथ ही हैं, निराग ही हैं, आनंदमय ही हैं और मुक्त ही हैं।

अहा, ऐसा भाव पर्याय में प्रगट हुआ, तब सहज परमात्मतत्त्व प्राप्त किया कहा जाता है; उसे अब भवदु:ख का अंत आया और आनंदमय आत्मतत्त्व के अनुभवपूर्वक मोक्षसुख का स्वाद लेते-लेते वह अल्पकाल में सिद्धपद को साधता है। सम्यग्दर्शन हुआ, तब से ऐसी अद्भुत दशा प्रारंभ हो गई है। अरे, धर्मी के ऐसे भाव को जो समझ ले, उसे भी धन्य है! उसे परपरिणति की महिमा छूट जाएगी और वह चैतन्यमात्र आत्मा की सहज महिमा में लीन होगा।

अन्तर में सहज महिमावंत चैतन्यवस्तु के अनुभव में जहाँ पर्याय मग्न हुई, वहाँ कर्ता-कर्म के भेद की वासना छूट गई और शुद्धात्मा की अनुभूति हुई। यह द्रव्य कर्ता और पर्याय कार्य—ऐसे कर्ता-कर्म के भेद की भ्रांति रहे, तब तक शुद्धात्मतत्त्व प्राप्त नहीं होता; इसलिये द्रव्य-पर्याय के भेद की भ्रान्ति को भी दूर करके अन्त में जिसने अभेद-अनुभूति में चैतन्यतत्त्व को प्राप्त कर लिया है, वह जीव अतीन्द्रिय आनंद को अनुभवता हुआ मोक्षरूपी महालक्ष्मी को प्राप्त करके सदा मुक्त ही रहेगा।—अहा, उसकी अतुल महिमा की क्या बात! ऐसे तत्त्व का स्वाद आया, वहाँ अब जन्म-मरण कैसे? वह तो भवदु:ख से छूटकर चैतन्यसुख में लीन हुआ। जगत में किसी पदार्थ से उसकी तुलना नहीं हो सकती। उसकी महिमा अपार है।

आत्मा ज्ञानचेतनास्वरूप है। मेरे ज्ञानचेतनास्वरूप तत्त्व में कर्म का संबंध नहीं है, कर्म के संबंधवाले कोई अशुद्ध भाव मुझमें नहीं हैं; मेरा तत्त्व कर्मों से अत्यंत भिन्न है। कर्म, अशुद्धभाव और शुद्धचेतना—यह सब भिन्न-भिन्न शोभायमान हैं। उनमें शुद्धचेतना द्वारा अलंकृत ऐसा आत्मा मैं हूँ, अशुद्धभाव या कर्म तो मुझसे बिल्कुल भिन्न हैं।—ऐसा मेरा मंतव्य है अर्थात् मैं अपने आत्मा को ऐसा अनुभवता हूँ।

अहो, ऐसा भिन्न आत्मा सदा विद्यमान है, उसकी गहराई में उतरे बिना किसी प्रकार जीव को शांति या सुख का वेदन नहीं होता। अरे, शांति के वेदन रहित जीवन को आत्मा का जीवन कैसे कहा जा सकता है? राग और दु:ख के अलंकारों से कहीं आत्मा शोभायमान होता है? आत्मा तो अपनी आनंदमय शुद्ध चेतना से अलंकृत है; उसी में आत्मा की शोभा है।

चेतना से जिसप्रकार जड़ शरीर भिन्न है और कर्म भिन्न है, उसीप्रकार राग भी चेतना से

भिन्न ही है। चेतना में राग की उपाधि नहीं है, वह तो राग से पृथक् अपने सहज निजगुणों से शोभायमान है।—अहा, ऐसे निजगुण-पर्यायों से अलंकृत जगत्प्रसिद्ध सत्य आत्मा को हे भव्य जीवो! तुम जानो। कर्म से तथा विकारी भावों से भिन्न ऐसी चेतना द्वारा शोभित चैतन्यवस्तु को ज्ञान में इसप्रकार उत्कीर्ण करो कि ज्ञान स्वयं वीतरागी आनंद से सुशोभित हो उठे, अशुद्धता का कोई अंश उसमें न रहे। ऐसी चेतना से जिसने अपने आत्मा को अलंकृत किया, उसने समस्त जिनागम का सार अपने ज्ञान में उत्कीर्ण कर लिया... उसका आत्मा स्वयं परमागम का मंदिर हुआ।

भाई, शांतिस्वरूप तेरा आत्मा स्वयं है। परभावों से और जड़ से भिन्न तेरा चैतन्य-भाग परम शांति से भरपूर अखंड विद्यमान है, अपने उस चैतन्य-भाग को लेकर तू आनंदित हो! तेरा भाग अति सुंदर है, बड़ा है, विकार की मिलावट उसमें नहीं है। अरे, अपनी भिन्न वस्तु को एकबार तू देख तो सही! उसे देखने पर तुझे अपूर्व तृप्ति का आनंद होगा।

वाह! संतों की वाणी शांति देनेवाली है।
वीतराग के वचन समझते हुए आत्मा में से आनंद झरता है।

अहो, जिनेन्द्रभगवान ने उपयोगस्वरूप आत्मा को सदा कर्मों से और राग से भिन्न ही कहा है। कर्म से भिन्न उपयोगस्वरूप आत्मा जगत में प्रसिद्ध है। ऐसे जगप्रसिद्ध सत्य आत्मा को हे भव्य! तू जान। उसे तू अनुभव में ले। अहा, जैनशासन में केवलज्ञानी परमात्मा ने दिव्यध्वनि द्वारा कर्म से अत्यंत भिन्न चिदानंदस्वरूप आत्मा बतलाया है; उसे जो जानता है, उसी ने वास्तव में भगवान के शुद्ध वचन को जाना है। कर्म से और राग से भिन्न शुद्ध आत्मा को बतलायें उन्हीं को 'शुद्धवचन' कहा जाता है। जो वचन राग-द्वेष-मोह की पुष्टि करे, वह वचन शुद्ध नहीं है। जो वचन आत्मा के वीतरागभाव को पुष्ट करते हैं, वे ही शुद्धवचन हैं। ऐसे शुद्धवचनरूप जिनोपदेश को प्राप्त करके हे भव्य! परभावों से अत्यंत मिश्र ऐसे प्रसिद्ध आत्मा को तू जान! उसे अनुभव में ले! उसे जानने-अनुभवने से तुझे अपूर्व प्रसन्नता होगी, आनंद होगा और तू मोक्ष का साधक बन जायेगा।

भगवान महावीर द्वारा कहा गया ऐसा आनंदस्वरूप आत्मा सत्य है, वह जगत में प्रसिद्ध है। ऐसे जगप्रसिद्ध सत्य को वीतरागी संतों ने जिनशासन में प्रगट किया है। ऐसे जगप्रसिद्ध सत्य को जानकर हे भव्य! तू भी महावीर भगवान के मार्ग में आ जा!.... ●●

जिससे भव का अंत आये ऐसी

भक्ति

[गतांक से आगे]

❋ अहा, शुद्धात्मा में उपयोग की एकाग्रतारूप इस परम योगभक्ति में आत्मा के असंख्यप्रदेश आनंदरस में निमग्न हो जाते हैं। उस आनंद के वेदन से हुई तृप्ति का क्या कहना! उस वीतरागसुख की क्या बात! (79)

❋ आत्मा का शुद्धस्वभाव त्रिकाल है, वह भूतार्थ है-सत्यार्थ है और उसमें अभेद हुई शुद्ध पर्याय, वह भी भूतार्थ है, सत्यार्थ है; रागादिभाव अभूतार्थ हैं। पर्याय अंतर्मुख होकर जहाँ भूतार्थ भगवान की समीपता करके उसमें लीन हुई, वहाँ उस पर्याय में वीतरागी आनंद की फुहारें छूटने लगती हैं। (80)

❋ जिन्हें भवछेदक निर्वाणभक्ति प्रगट हुई है, अर्थात् जिनको रत्नत्रय की आराधना वर्तती है, ऐसे धर्मात्मा जानते हैं कि अहो! श्रीगुरु के सान्निध्य में सुखकारी धर्म हमने प्राप्त किया है, और चैतन्य की अगाध महिमा को जाननेवाले ज्ञान द्वारा समस्त मोह की महिमा नष्ट हो गई है।—ऐसा मैं राग-द्वेष रहित शुद्ध ध्यान द्वारा शान्तचित्त से आनंदमय निजतत्त्व में स्थित होता हूँ, निजपरमात्म में मग्न होता हूँ। (81)

❋ श्रीगुरु ने सान्निध्य का फल क्या?—कि निर्मल सुखकारी धर्म की प्राप्ति हुई, वह श्रीगुरु के सान्निध्य का फल है। श्रीगुरु का उपदेश भी ऐसा ही है कि राग से भिन्न चैतन्यतत्त्व की अनुभूति कर! जिसने ऐसी अनुभूति की, उसी ने वास्तव में श्रीगुरु को पहिचानकर उनका सान्निध्य किया है। श्रीगुरु के उपदेश के साररूप आनंदमय आत्म-अनुभूति उसने प्राप्त कर ली है। (82)

❋ मात्र शुभराग, वह श्रीगुरु के उपदेश का सार नहीं है। जो राग में स्थित है और राग से पार चैतन्य की समीपता नहीं करता, वह श्रीगुरु के निकट नहीं परंतु दूर है। चैतन्य की

समीपता करके जिसने सुखकारी धर्म प्राप्त किया है, उसी ने वास्तव में श्रीगुरु की निकटता की है, और मोहबल को ज्ञानबल से नष्ट कर दिया है। (83)

❋ मात्र शास्त्रों से नहीं परंतु ज्ञानी गुरु के सान्निध्य से आत्मतत्त्व को जानने पर निर्मल सुखरूप धर्म प्राप्त होता है। सम्यग्दर्शनादि वीतरागपरिणति, वह सुखरूप धर्म है, उसकी प्राप्ति चैतन्यस्वभाव में सन्मुखता से होती है। अंतर में अपने परमतत्त्व की समीपता है और निमित्तरूप में गुरु की समीपता है। (84)

❋ गुरु कैसे हैं ?—कि जो चैतन्यतत्त्व की महिमा बतलाकर उसमें दृष्टि करने को कहते हैं। श्रीगुरु की समीपता के द्वारा ऐसे आत्मतत्त्व की दृष्टि करके, ज्ञान की महिमा द्वारा समस्त मोह की महिमा को नष्ट कर दिया है। चैतन्य की महिमा प्रगट हुई, वहाँ मोह की महिमा छूट गई। सम्यग्दर्शन होने के साथ ही समस्त मोह नष्ट नहीं हो जाता, परंतु उस मोह की महिमा तो नष्ट हो गई है, उसकी शक्ति एकदम क्षीण हो गई है। (85)

❋ श्रीगुरु के समीप चैतन्यतत्त्व का श्रवण करके हे जीव! तू अन्तरतत्त्व के निकट जा... वहाँ चैतन्य की परम महिमा ज्ञान में आते ही परभाव की महिमा छूट जायेगी। ऐसे तत्त्व को अंतर में अनुभवना, वह श्रीगुरु के सान्निध्य में करना है, वही श्रीगुरु की आज्ञा है। (86)

❋ वर्तमान में राग-द्वेष होने पर भी धर्मी को सम्यग्दर्शन में चैतन्यपरमेश्वर की प्राप्ति होने पर उसकी महिमा में ज्ञान मग्न हुआ, वह ज्ञानधारा समस्त रागादि परभावों से भिन्न हो गई, उसमें आनंदकंद आत्मा की ही महिमा रही।—इसका नाम निर्वाणभक्ति है। (87)

❋ अहा, श्रीगुरु ने मुझसे ऐसा कहा है कि तेरे आनंदमय परमात्मतत्त्व के समीप जा। इसप्रकार श्रीगुरु के उपदेश से परमात्मतत्त्व के समीप जाते ही (अंतर्मुख परिणति करने पर) आनंदकारी धर्मदशा मुझे प्रगट हुई है, उसमें अब रागादि की महिमा नहीं रह सकती। जिसे पर की या शुभराग भी महिमा होती है, उसे अपने वीतरागी आनंदमय तत्त्व की महिमा नहीं आती और सुखकारी धर्म उसे प्रगट नहीं होता, वह तो राग के दुःख का ही अनुभव करता है। (88)

❋ श्रीगुरु ने ऐसा कहा है कि ज्ञान में चैतन्यभाव की महिमा लाकर स्वसन्मुख हो जा। गुरु ने

ऐसा नहीं कहा है कि तू अपनी वाणी का लक्ष करके ही रुक जाना, या मेरे ऊपर शुभराग करके रुक जाना। परंतु श्रीगुरु ने तो ऐसा कहा है कि तेरा परमात्मा तेरे अंतर में तेरे समीप ही विराजमान है, उसे अनुभव में ले। वाणी और राग का लक्ष छोड़कर, पर की महिमा छोड़कर आत्मा के परमस्वभाव की महिमा कर-यही बारह अंग का सार है। ज्ञान-आनंदमय आत्मा की अनुभूति ही सर्व सिद्धांतों का सार है, वही गुरु का परमार्थ सान्निध्य है, वह सिद्धों की निश्चयभक्ति और वही निर्वाण का आनंदमय मार्ग है। (89)

❋ शुद्धात्मा की अनुभूति ही द्वादशांग का सार है; वही समस्त गुरुओं के उपदेश का सार है। जिसने स्वानुभूति की, उसने सर्व सिद्धांतों का सार जान लिया है, फिर वहाँ ऐसी कोई रुकावट नहीं कि बारह अंग पढ़े, तभी आत्मा की अनुभूति हो। उसे शास्त्राभ्यास का बंधन नहीं कि इतने शास्त्र पढ़ना ही होंगे। जिसने सर्व शास्त्रों के रहस्यभूत आत्मविद्या पढ़ा ली है—उसकी अनुभूति कर ली है, उसने समस्त सर्वज्ञ परमात्मा को अपने में प्राप्त कर लिया है।—वह भक्त है, वह आराधक है, वह मोक्ष का पथिक है। अरे, आत्म-अनुभूति की महिमा लोगों को ज्ञात नहीं है, और बाह्य शास्त्र-अभ्यास आदि परलक्षी ज्ञान में वे अटक जाते हैं। परंतु शास्त्रों में बतलाया हुआ चैतन्यतत्त्व अंतर में विराजमान है—उसकी सन्मुखता किये बिना शास्त्रों का रहस्य समझ में नहीं आ सकता। (90)

❋ श्रीगुरु के सान्निध्य से जो आनंदमय स्वानुभूति प्रगट हुई, वह अद्भुत है। अहा, अंतर में शांतरस की धारा बह रही है। ऐसी अनुभूति, वह निर्मल सुखकारी धर्म है। ऐसा धर्म मैंने प्राप्त किया है और ऐसे आनंदमय आत्मतत्त्व के ज्ञान द्वारा समस्त मोह की महिमा मैंने नष्ट कर दी है; ज्ञानतत्त्व की अगाध महिमा प्रगट हुई, वहाँ मोह की महिमा छूट जाती है।—इसप्रकार श्रीगुरु के निकट अपने परमतत्त्व को प्राप्त करके अब मैं उसमें मग्न होता हूँ। समस्त तीर्थंकरों ने ऐसा किया है और मैं भी उन तीर्थंकरों के मार्ग में चलता हूँ।—ऐसी दशा का नाम परमभक्ति है। यह भक्ति, भव को छेदनेवाली है और इस भक्ति में चैतन्य के आनंदरस की धारा बहती है। (91)

❋ यह शरीर तो मल-मूत्र का पिण्ड है और चैतन्यप्रभु आत्मा सुंदर आनंदरसमय अनंत गुणों

का पिण्ड है।—ऐसे सुंदर आनंदतत्त्व में जिसका चित्त ललचाया है—उसमें उत्सुक होकर मग्न हुआ है, उसका चित्त इन्द्रिय-विषयों में लोलुप नहीं रहता। (92)

❋ अहा, चैतन्य के असंख्य प्रदेशों से तो आनंदरस झरता है! और शरीर के अंगों से तो मल-मूत्रादि दुर्गंध बहती है। देखो, चैतन्यतत्त्व की सुंदरता! आनंदरसमय यह उत्तम तत्त्व जगत में सर्वश्रेष्ठ है; उसके सन्मुख होने पर पर्याय में से आनंद झरता है। अरे जीव! एकबार बाह्य विषयों की लोलुपता छोड़कर अंतर में ऐसे सुंदर आनंदमय महान तत्त्व का लोलुपी हो... उसे जानने की अभिलाषा कर। ऐसे तत्त्व को जानकर उसकी अपूर्व भावना से तुझे मोक्षसुख का स्वाद यहीं अनुभव में आयेगा। (93)

❋ अहा, देखो यह पंचमकाल के संत की वाणी! वे तो लाये हैं विदेह की वाणी। उसके भावों को अंतर में उतारे तो आत्मा को ऊपर उठा दे और राग के विकल्पों से पृथक् होकर चैतन्य की वीतरागी शांति का वेदन हो जाये!—ऐसी अपूर्व यह वीतरागी संतों की वाणी है। जिसे सुनकर मुमुक्षु का रोम-रोम हर्ष से उल्लसित हो जाता है, उसके अतीन्द्रिय-अनुभव के आनंद की तो क्या बात! (94)

❋ धर्मी हंस चैतनयसरोवर में आनंद के मोती चुगता है, वह राग का चारा नहीं चरता। जिसप्रकार कौआ मोती छोड़कर माँस को नोंचता है; उसीप्रकार अज्ञानी चैतन्य के आनंद को छोड़कर राग का सेवन करता है। अरे, चैतन्य हंस! तेरा चारा तो आनंद का होना चाहिए, राग-द्वेष को चींथना तुझे शोभा नहीं देता। (95)

❋ निजात्मभावना से अति अपूर्व सुख उत्पन्न होता है; अंतर्मुख होकर ऐसे सुख का अनुभव करनेवाले संत जीवन्मुक्ति का आनंद मानते हैं, दूसरों को उसका स्वाद नहीं आता। (96)

❋ अहो, मेरा परम चैतन्यतत्त्व आनंद में ही स्थित है, वह राग-द्वेष के द्वंद्व में नहीं है:—इसप्रकार सम्यग्दृष्टि स्वतत्त्व को ध्येय बनाकर ध्याता है और उसके परम सुख का वेदन करता है, वहाँ उसे भव-संबंधी सुख की वांछा नहीं है। उसका चित्त तो चैतन्यसुख में ही लीन है, मोक्षसुख की ओर ही उसका मुख है; जहाँ भवसुख की वांछा नहीं है, वहाँ उसके कारणरूप किन्हीं बाह्य पदार्थों का मुझे क्या काम? वे तो सब मुझसे अत्यंत दूर

हैं।—इसप्रकार बाह्य में सर्वत्र निस्पृह होकर धर्मी ने अपना चित्त चैतन्यसुख में लगाया है, वही मोक्षहेतु परमभक्ति है। (97)

❋ निजतत्त्व कितना सुंदर है! वह तो राग-द्वेष रहित है, और ऐसे तत्त्व में संलग्न परिणति भी राग-द्वेष रहित है।—ऐसे परमतत्त्व को मैं पुनः-पुनः सम्यक्रूप से भाता हूँ।—इसप्रकार स्वसन्मुख होकर परमात्मतत्त्व की भावना ही परमभक्ति है; वह भव का छेद करनेवाली तथा अशरीरी मोक्ष का महा आनंद देनेवाली है। (98)

❋ जिसने परमात्मतत्त्व को दृष्टि में लिया, वह जीव निहाल हो गया! उसकी पर्याय में परमात्मा ने आकर निवास किया... वह परमात्मा के मार्ग पर चला। परमात्मा का मार्ग कहो या आत्मा के सुख का मार्ग कहो, जिसने स्वसन्मुख होकर ऐसे आत्मसुख का स्वाद लिया, उसे संसार संबंधी किसी सुख में सुख का अनुभव नहीं होता; उसमें तो दुःख है; आकुलता है। इसलिये समस्त भवसुख की वांछा छोड़कर वह पुनः-पुनः निज परमात्मतत्त्व में ही चित्त को लगाता है, बारंबार एक परमात्मतत्त्व की ही भावना भाता है। एक क्षण भी साधक की दृष्टि परमात्मतत्त्व में से नहीं हटती। (99)

❋ देखो, इसप्रकार तीर्थंकर भगवंतों ने चैतन्यतत्त्व में चित्त को लगाकर मोक्षसुख की साधना की, इसलिये सर्व जीवों के लिये भी यही मोक्ष का उपाय है।

इस रीति कर ऋषभादि जिनने, श्रेष्ठ भक्ति योग की
शिवसुख लिया, इस हेतु कर तू भक्ति उत्तम योग की॥ (100)

❋ देखो, आचार्यदेव ने ऋषभादि समस्त जिनवरों की साक्षी देकर यह मोक्ष के कारणरूप भक्ति बतलायी। यह परमात्मभक्ति भव का नाश करके मोक्षसुख प्रदान करनेवाली है। इसलिये हे भव्य जीवो! तुम भी आत्मा के उपयोग को अंतर में लगाकर मोक्ष के कारणरूप ऐसी भक्ति करो! (101)

परमार्थरूप ऐसी यह सिद्धभक्ति भवदुःख का अंत करनेवाली तथा आत्मा को मोक्षसुख का आनंद देनेवाली है।

समाप्त

सम्यग्ज्ञान की महिमा और उसकी आराधना का उपदेश

मोक्षमार्ग का दूसरा रत्न सम्यग्ज्ञान है; सम्यग्दर्शन के साथ होनेवाला वह सम्यग्ज्ञान अपने आत्मा को पर से भिन्न चिदानंदस्वरूप जैसा है, वैसा जानता है। सम्यग्दर्शन के साथ होनेवाले स्वोन्मुखी ज्ञान में अंशत: अतीन्द्रियपना हुआ है, राग से भिन्न चैतन्य के अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद उसमें आया है—ऐसा सम्यग्ज्ञान, सो वीतराग-विज्ञान है। ऐसे जैनधर्म को प्राप्त करके आत्मसुख के लिये हे भव्य जीवो! तुम निरंतर सम्यग्ज्ञान की आराधना करो—ऐसा वीतरागमार्गी संतों का उपदेश है।

सम्यग्दर्शन के साथ ही सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति होती है। दोनों एक साथ ही प्रगट होते हैं, उनमें समयभेद नहीं है; तथापि उन दोनों की आराधना भिन्न-भिन्न कही गई है, क्योंकि लक्षणभेद से दोनों में भेद है—उसमें कोई बाधा नहीं है। सम्यग्दर्शन का लक्षण तो शुद्धात्मा की श्रद्धा है और सम्यग्ज्ञान का लक्षण स्व-पर के प्रकाशनरूप ज्ञान है। उनमें सम्यक् श्रद्धा, वह कारण है और सम्यग्ज्ञान, वह कार्य है; दोनों एकसाथ होने पर भी दीपक और प्रकाश की भाँति उनमें कारण-कार्यपना कहा जाता है। सम्यक्श्रद्धा और ज्ञान दोनों आराधनाएँ एकसाथ ही प्रारंभ होती हैं परंतु पूरी एक साथ नहीं होती। क्षायिकसम्यक्त्व होने पर श्रद्धा-आराधना तो पूर्ण हो गई परंतु ज्ञान की आराधना तो केवलज्ञान होने पर पूर्ण होती है; इसलिये ज्ञान की आराधना भिन्न बतलायी है। सम्यग्दर्शन की भाँति सम्यग्ज्ञान की भी बड़ी महिमा है।

जिसप्रकार सूर्य स्व तथा पर को प्रकाशित करता है, उसीप्रकार सम्यग्ज्ञानरूपी चैतन्यसूर्य अपने आत्मस्वरूप को तथा पर को प्रकाशित करे, ऐसा उसका स्वभाव है। राग में कहीं स्व को या पर को जानने की शक्ति नहीं है। 'मैं राग हूँ' ऐसी खबर कहीं राग को नहीं है, परंतु राग से भिन्न ऐसा ज्ञान जानता है कि 'यह राग है और मैं ज्ञान हूँ।'—इसप्रकार राग का और

ज्ञान का स्वभाव भिन्न है। सचमुच राग में चेतनपना ही नहीं है; ज्ञान के अचिंत्य सामर्थ्य के निकट राग तो कुछ है ही नहीं। निजभाव में अभेद होकर तथा परभाव से भिन्न रहकर ज्ञान स्व-पर को, स्वभाव-विभाव सबको ज्यों का त्यों जानता है। राग भी ज्ञान से भिन्न तत्त्व है, राग कहीं स्वतत्त्व नहीं है। ऐसा भेदज्ञान करने की शक्ति ज्ञान में ही है। वह ज्ञान वीतरागविज्ञान है, वह जगत में साररूप है और मोक्ष का कारण है।

मुमुक्षु जीव को प्रथम तो सच्चे तत्त्वज्ञान द्वारा सम्यग्दर्शन प्रगट करना चाहिये। ज्ञान या चारित्र सम्यग्दर्शन के बिना नहीं होते। मिथ्यात्वसहित जो भी शास्त्रज्ञान हो या व्रतादि शुभाचरण हो, वह सब मिथ्या ही है, उससे जीव को अंशमात्र भी सुख प्राप्त नहीं होता। मोक्ष की प्रथम सीढ़ी सम्यग्दर्शन है, उसे हे भव्य जीवो! तुम शीघ्र धारण करो।

अरे, इस संसार के दु:खों से छूटकर जिसे मोक्ष प्राप्त करना हो, उसके लिये यह बात है। जीव संसारभ्रमण तो अनादिकाल से कर ही रहा है; पुण्य और पाप, स्वर्ग और नरकादि गतियों में तो अनादि से भटक ही रहा है, वह कोई नई बात नहीं है, उससे पार आत्मा का अनुभव कैसे हो, सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कैसे हो? उसकी यह बात है। यह अपूर्व है और यही सुखी होने का उपाय है। भाई! संसार की चार गतियों के परिभ्रमण से यदि तू थक गया हो और अब उससे छूटकर मोक्षसुख की इच्छा हो तो यह उपाय कर... वीतरागविज्ञानरूप सच्चा ज्ञान कर, आत्मज्ञान कर।

अहा, सम्यग्ज्ञान अपूर्व वस्तु है, वही सर्व कल्याण का मूल है, उसके बिना किंचित् कल्याण नहीं होता। एक क्षण भी निर्विकल्प चिदानंद आत्मा के अनुभवसहित सम्यग्ज्ञान कर तो कल्याण हो। उसकी प्राप्ति स्वयं अपने से होती है, अन्य के द्वारा नहीं होती। देव-गुरु-शास्त्र ऐसा कहते हैं कि हे जीव! तेरे लिये तो हम परद्रव्य हैं; हमारी ओर देखने से तुझे सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति नहीं होगी, परंतु तेरे अपने लक्ष से ही तुझे सम्यग्दर्शनादि प्रगट होंगे। इसलिये राग की तथा पराश्रय की बुद्धि छोड़। परलक्ष छोड़कर अपने में पुण्य-पाप से पार ऐसे शुद्ध ज्ञानानंदस्वरूप आत्मा की रुचि कर। बाह्य पदार्थ तो कहीं दूर रहे, अपने में विद्यमान गुणभेद का विकल्प भी जिसमें नहीं है-ऐसा सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है, वह अपूर्व वस्तु है। उसके बिना जीव ने पूर्व काल में अन्य सबकुछ किया, किन्तु अपने स्वरूप का सच्चा

श्रवण-रुचि-आदर एवं अनुभव कभी नहीं किया; इसलिये अब तू जागृत होकर आत्मा की पहिचान कर-ऐसा संतों का उपदेश है। अपना परमात्मस्वरूप परमशांतरस से भरपूर है; उसमें गुण-गुणीभेद को भी छोड़कर अंतर्मुख सम्यग्दर्शन की आराधना करो... उसकी बात कही। अब उस सम्यग्दर्शनपूर्वक ज्ञान की आराधना की बात चलती है। गुणभेद का विकल्प सम्यग्दर्शन में या सम्यग्ज्ञान में कार्य नहीं करता; सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान दोनों विकल्पों से भिन्न हैं। अंतर में राग से भिन्न होकर चैतन्यस्वभाव की अनुभूतिपूर्वक सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होता है और अनंतानुबंधी के अभाव से प्रगट हुआ सम्यक्चारित्र का अंश भी होता है, उसे स्वरूपाचरण कहते हैं। चौथे गुणस्थान से जीव को ऐसे धर्म का प्रारंभ हो गया और वह मोक्ष के मार्ग में चलने लगा।

पहले सम्यग्दर्शन और फिर सम्यग्ज्ञान—ऐसा समयभेद नहीं है, दोनों साथ ही हैं। जहाँ आत्मा की सम्यक्श्रद्धारूप दीप प्रज्वलित हुआ, वहाँ उसके साथ ही सम्यग्ज्ञानप्रकाश प्रगट होता है। सम्यग्दर्शन हो, वहाँ साथ में मुनिदशा होती ही है—ऐसा नियम नहीं है; मुनिदशा हो या न भी हो, परंतु सम्यग्ज्ञान तो साथ होता ही है—ऐसा नियम है। दर्शन सम्यक् हो और ज्ञान मिथ्या रहे, ऐसा नहीं हो सकता। ज्ञान भले ही अल्प हो, परंतु वह सम्यक् होता है। इसप्रकार सम्यग्दर्शन और सम्यक्ज्ञान दोनों साथ होने पर भी उन दोनों में लक्षणभेद आदि से अंतर भी है; ऐसा जानकर ज्ञान की भी आराधना करो। सम्यग्ज्ञान, वह सम्यग्दर्शन के साथ ही प्रारंभ होता है; परंतु सम्यग्दर्शन के साथ ही वह पूरा नहीं हो जाता, इसलिये उसकी भिन्न आराधना करना।

दोनों साथ होने पर भी सम्यग्दर्शन कारण है, और सम्यग्ज्ञान कार्य है,—इसप्रकार उनमें कारण-कार्य का व्यवहार किया जाता है। निजानंदस्वरूप का अनुभव और प्रतीति हुई, वहाँ ज्ञान भी सम्यक् हुआ। देखो, सम्यग्दर्शन का कार्य सम्यग्ज्ञान कहा है; उसमें सम्यग्दर्शन की प्रधानता बतलाने के लिये उसे कारण कहा है। इस कारण-कार्य में पहले कारण और फिर कार्य—ऐसा नहीं है, दोनों साथ ही हैं।

आत्मा स्वयं क्या वस्तु है, उसे तो जाना नहीं, और उसके बिना भक्ति-व्रत-दान-पूजादि किये, उससे पुण्यबन्ध करके स्वर्ग में गया और फिर चार गतियों में परिभ्रमण किया।

सम्यग्दर्शन के बिना आत्मा का लाभ नहीं हुआ और भव का अंत नहीं आया। यह तो जिनसे भव का अंत आये और मोक्षसुख की प्राप्ति हो, ऐसे सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान की बात है। आत्मदर्शन और आत्मज्ञान के बिना तीनकाल-तीनलोक में कहीं सुख प्राप्त नहीं होगा; भले पुण्य करके स्वर्ग में जाये, तथापि वहाँ भी लेशमात्र सुख नहीं है। पुण्य-पाप किये, वह तो अनादि से चल रहा है, उसमें कोई नवीनता नहीं है। आत्मा के ज्ञान द्वारा मिथ्यात्व का अभाव हो, वह अपूर्व मोक्षमार्ग की चाल है। देखो, सम्यग्ज्ञान को सम्यग्दर्शन का कार्य कहा, परंतु उसे शुभराग का कार्य नहीं कहा। राग करते-करते सम्यग्ज्ञान हो जायेगा-ऐसा नहीं है, क्योंकि सम्यग्ज्ञान, वह कोई राग का कार्य नहीं है।

सम्यग्दर्शन का लक्षण है, श्रद्धा करना; सम्यग्ज्ञान का लक्षण है जानना।

सम्यग्दर्शन वह कारण; सम्यग्ज्ञान वह कार्य।

— ऐसे दो प्रकार से लक्षणों से भिन्नता बतलाई, उसमें कोई बाधा नहीं है। जिसप्रकार दीपक और प्रकाश दोनों एक साथ होते हैं, तथापि दीपक के कारण प्रकाश हुआ—ऐसा कहा जाता है, उसीप्रकार सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान एकसाथ होने पर भी उनमें कारण-कार्यपना कहा जा सकता है। देखो, दोनों पर्यायें एकसाथ होने पर भी उनमें कारण-कार्यपना कहा; श्रद्धा को मुख्य बतलाने के लिये उसे कारण कहा और ज्ञान को कार्य कहा। यह कारण-कार्य दोनों शुद्ध हैं, उनमें बीच में कहीं राग नहीं आया। राग या देहादि की क्रिया में तो सम्यग्ज्ञान के कारण का उपचार भी नहीं आता।

❀ पूर्व पर्याय कारण और उत्तर पर्याय कार्य-ऐसा भी कहा जाता है,

—जैसे कि मोक्षमार्ग, वह कारण और मोक्ष, वह कार्य।

❀ अनेक वर्तमान पर्यायों में एक कारण और दूसरी कार्य—ऐसा भी कहा जाता है, जैसे कि सम्यग्ज्ञान कारण और सुख कार्य।

❀ द्रव्य कारण और पर्याय कार्य-ऐसा भी कहा जाता है;—जैसे कि सम्यग्दर्शन का कारण शुद्ध भूतार्थ आत्मा।-ऐसे अनेक प्रकार विवक्षा के कारण-कार्य के भेद होते हैं, उन्हें ज्यों का त्यों जानना चाहिये। कारण-कार्य को एकांत अभेद मानना या एकांत भिन्न

आगे-पीछे मानना, वह यथार्थ नहीं है। अज्ञानी सच्चे कारण-कार्य को नहीं जानता और दूसरे विपरीत कारणों को मानता है, अथवा तो एक के कारण-कार्य को दूसरे में मिलावट करके मानता है, उसके ज्ञान में कारण-कार्य का विपर्यास है अर्थात् मिथ्याज्ञान है। मिथ्याज्ञान में तीन दोष कहे हैं—कारण-विपरीतता, स्वरूप-विपरीतता और भेदाभेद-विपरीतता।

❀ आत्मा है, ऐसा माने परंतु उसकी पर्याय का कारण परद्रव्य है—ऐसा माने, अथवा आत्मा दूसरे के कार्य का कारण है—ऐसा माने, अथवा आत्मा की मोक्षदशा का कारण राग है—ऐसा माने, तो उसे कारण-विपरीतता है, इसलिये सच्चा ज्ञान नहीं है।

❀ आत्मा है—ऐसा तो कहे, परंतु उसे ईश्वर ने बनाया है—ऐसा माने, अथवा पृथ्वी आदि पंचभूत के संयोग से आत्मा बना है—ऐसा माने, अथवा सर्वव्यापक ब्रह्म माने, स्वतंत्र भिन्न अस्तित्व न माने तो उसे स्वरूप-विपरीतता है, इसलिये सच्चा ज्ञान नहीं है।

❀ गुण और गुणी का सर्वथा भेद माने, या सर्वथा अभेद माने तो उसके भेदाभेद विपरीतता है। अथवा अन्य ब्रह्म के साथ इस आत्मा को अभेद मानना, अथवा ज्ञान को आत्मा से भिन्न मानना, वह भी विपरीतता है, उसे वस्तु का सच्चा ज्ञान नहीं है।

—इसप्रकार अज्ञानी जो कुछ जानता है, उसमें उसे किसी न किसी प्रकार विपरीतता होने से उसका सर्व ज्ञातृत्व मिथ्याज्ञान ही है; मोक्ष को साधने के लिये वह कार्यकारी नहीं होता।

ज्ञान में मिथ्याश्रद्धा के कारण ही मिथ्यापना है या ज्ञान में स्वयं में कोई दोष है ?—ऐसे प्रश्न के उत्तर में पंडित टोडरमलजी कहते हैं कि—अज्ञानी के ज्ञान में भी भूल है; क्योंकि ज्ञान में ज्ञातृत्व होने पर भी वह ज्ञान अपने स्वप्रयोजन को नहीं साधता, स्वज्ञेय को जानने की ओर उन्मुख नहीं होता।—यह उसका दोष है। अज्ञानी अप्रयोजनभूत पदार्थों को जानने में तो ज्ञान को प्रवर्तित करता है, परंतु जिससे अपना प्रयोजन सिद्ध होता है, ऐसे आत्मा का ज्ञान तथा स्व-पर का भेदज्ञान वह नहीं करता, इसलिये उसके ज्ञान में भी भूल है। मोक्ष के हेतुभूत स्वतत्त्व की जाननेरूप प्रयोजन को सिद्ध नहीं करता; इसलिये वह ज्ञान मिथ्या है। भगवान के मार्ग अनुसार जीवादि-तत्त्वों का स्वरूप बराबर जानने से अज्ञान दूर होता है और सच्चा ज्ञान होता है। सच्चा

ज्ञान, वह परम अमृत है, अमृत ऐसे मोक्ष-सुख का वह कारण है। इसलिये हे भव्य जीवो! तुम ऐसे सम्यग्ज्ञान का सेवन करो।

सम्यग्दर्शन के साथ का ज्ञान अपने आत्मा को पर से भिन्न चिदानंदस्वरूप जैसा है, वैसा स्वसंवेदनपूर्वक अतीन्द्रिय ज्ञान से जानता है। सम्यग्दर्शन के साथवाले सम्यक् ज्ञान में अंशतः अतीन्द्रियपना हुआ है। ऐसा सम्यग्ज्ञान, वह मोक्षमार्ग का द्वितीय रत्न है। उपयोग शुद्धात्म-सन्मुख होने पर यह सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान दोनों रत्न एकसाथ प्रगट होते हैं और उसी समय अनंतानुबंधी कषायों के अभाव से स्वरूपाचरण भी होता है। ऐसा मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन होने पर चतुर्थ गुणस्थान में प्रारंभ होता है। सिद्धप्रभु के आनंद की वानगी चखता हुआ सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ, वहाँ एकसाथ अनंत गुणों में निर्मलकार्य होने लगा है।

श्रद्धागुण की शुद्धपर्याय, वह सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन कहीं त्रैकालिक गुण नहीं है; श्रद्धागुण त्रिकाल है और उसकी सम्यक्पर्याय हुई, सो सम्यग्दर्शन है; उसमें मिथ्यात्व संबंधी दोष का अभाव होने से वह सम्यग्दर्शन 'गुण' कहलाता है। मिथ्यात्व, वह मलिनता और दोष है, उसके सामने सम्यग्दर्शन, वह पवित्र गुण है। उसमें शुद्धता है, निर्मलता है, इसलिये उसे गुण कहा है। उसमें अभेद आत्मा की निर्विकल्प प्रतीति है, वह मोक्षपुरी में प्रवेश करने का द्वार है।

सम्यग्ज्ञान, वह ज्ञानगुण की पर्याय है। चतुर्थ गुणस्थान में आत्मा का अनुभव ज्ञान हुआ, तब से सम्यग्ज्ञान का प्रारंभ हुआ, परंतु वह एकसाथ पूर्ण नहीं हो जाता; केवलज्ञान होने पर उसकी पूर्णता होती है। सम्यग्ज्ञान स्व-पर को, भेद-अभेद को, शुद्ध-अशुद्ध को सबको ज्यों का त्यों जानकर अपने आत्मा को परभावों से भिन्न साधता है।

मैं शुद्ध परिपूर्ण अभेद एक भूतार्थ आनंदमय चैतन्यतत्त्व हूँ—ऐसे स्वसंवेदनपूर्वक सम्यग्दृष्टि जीव आत्मा की मान्यता करता है। सम्यग्दर्शन में अपने ऐसे आत्मा का स्वीकार है। सम्यग्दर्शन पर्याय में स्वसन्मुखता है, उसमें परोन्मुखता नहीं है। क्या पर की ओर देखने से सम्यग्दर्शन होता है? नहीं; किसी पर की ओर देखने से (देव-गुरु की सन्मुखता से भी) सम्यग्दर्शन नहीं होता। अपने भूतार्थ आत्मा की सन्मुखता से ही सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन पर्याय श्रद्धागुण की है, और श्रद्धागुण आत्मा का है, तो आत्मोन्मुख हुए बिना सम्यग्दर्शनपर्याय कहाँ से होगी? श्रद्धागुण और उसकी सम्यग्दर्शनपर्याय, वह तो आत्मा का

निजस्वरूप है, उस निजस्वरूप के सन्मुख होने से वह स्वयं श्रद्धागुण की निर्मलपर्यायरूप से परिणमित होता है। इस जीव का श्रद्धागुण कहीं देव-गुरु-शास्त्र के पास नहीं है कि उनमें से सम्यग्दर्शन पर्याय प्रगट हो? जहाँ श्रद्धागुण हो, वहाँ से उसकी सम्यग्दर्शनपर्याय प्रगट होती है। श्रद्धागुण आत्मवस्तु का है, उसकी अखंड प्रतीति द्वारा सम्यक्त्वरूप शुद्धपर्याय प्रगट होती है। सम्यक्त्व की भाँति समस्त गुणों की शुद्धपर्यायें भी स्वाश्रय से प्रगट होती है—ऐसा समझना।

क्या आत्मा का कोई गुण राग से है?—नहीं;

—तो राग की सन्मुखता से कोई गुण प्रगट नहीं होगा।

क्या आत्मा का कोई गुण निमित्त में है?—नहीं;

—तो निमित्त की सन्मुखता से कोई गुण प्रगट नहीं होगा।

क्या आत्मा का कोई गुण देव-गुरु-शास्त्र के पास है?—नहीं;

—तो उनकी सन्मुखता से कोई गुण प्रगट नहीं होगा।

भगवान आत्मा के सर्वगुण अपने में ही हैं, अन्यत्र कहीं नहीं; इसलिये आत्मा के अपने सन्मुख देखने से ही सर्व गुण प्रगट होते हैं, परसन्मुख देखने से कोई गुण प्रगट नहीं होता। त्रैकालिक गुणस्वभाव अपने में हैं, उसके सन्मुख होते ही सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यग्ज्ञान हुआ, आनंद भी हुआ और अनंत गुणों की निर्मलता के वेदनसहित मोक्षमार्ग खुल गया... अपना आनंदमय निजगृह जीव ने देख लिया।

हे भाई! यह तेरे निजगृह की बात है। अपने निजघर की बात तू उत्साहपूर्वक सुन। अनादि से रागादि पर-गृह को ही अपना माना था; यहाँ सर्वज्ञ परमात्मा संत तुझे अपना निजघर बतलाते हैं, जिससे अंतर में मोक्ष का द्वार खुल जाता है। सम्यग्दर्शन तो धर्म का प्रारंभ है, उसके बिना जीव जो कुछ करेगा, उससे जन्म-मरण का अंत नहीं आयेगा। इसलिये जो पूर्व अनंत काल में नहीं किया और जिसे प्रगट करते ही जन्म-मरण का अंत आकर मोक्ष की ओर का परिणमन प्रारंभ हो जाता है—ऐसा सम्यग्दर्शन शीघ्र आराधने योग्य है। उस सम्यग्दर्शनसहित सम्यग्ज्ञान की विशेष आराधना का वर्णन चलता है।

समवसरण के बीच गणधर और सौ इन्द्रों की उपस्थिति में सर्वज्ञ-वीतराग भगवान की

दिव्यध्वनि खिरती थी और गणधर भगवान उसे झेलते थे; उसे झेलकर गणधरों ने तथा कुन्दकुन्दाचार्यादि वीतरागी संतों ने जिन समसयसारादि परमागमों की रचना की, उन्हीं की परंपरा जैनमार्ग में चल रही है; उसका अनुसरण करके ही पंडित दौलतरामजी ने इस छहढाला की रचना की है। उसमें कहते हैं कि हे जीव! तेरे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-आनंद की खान जड़ में नहीं है, राग में नहीं है, विकल्प में नहीं है, तेरे आत्मा का श्रद्धागुण ही तेरे सम्यग्दर्शन की खान है, तेरा ज्ञानगुण ही तेरे ज्ञान की खान है, तेरा आनंदगुण ही महा आनंद की खान है; अनंत गुणों की खान तेरे आत्मा में है, ऐसे आत्मा के सन्मुख होने पर उसके श्रद्धा आदि अनंत गुणों का सम्यक् परिणमन हुआ, वही सम्यग्दर्शन-ज्ञानादि हैं। जहाँ जिस वस्तु का भंडार भरा है, उनमें से वह निकलती है; कुएँ में पानी हो तो निकलता है; उसीप्रकार सम्यग्दर्शन की खान कहाँ है ?—सम्यग्दर्शन की खान आत्मा है; अनंत गुणों की खान आत्मा है। सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति के लिये अपने आत्मा को छोड़कर कहीं अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं है। सम्यग्दर्शन का भंडार ऐसे आत्मस्वभाव का स्वीकार करते ही सम्यग्दर्शन होता है; दूसरा कोई उपाय है ही नहीं। सम्यग्ज्ञानादि की भी यही रीति है। शुद्धात्मा की सन्मुखता में अन्य किसी का अथवा रागादि का अवलंबन है ही नहीं। संपूर्ण मोक्षमार्ग एक आत्मा के ही आश्रित है।

आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसमें केवलज्ञान विद्यमान है। राग की मिलावट रहित अकेला शुद्धज्ञान, वह आत्मा का स्वरूप है। ऐसे आत्मा को जानने पर आनंदरस से भरपूर सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है। सम्यग्दर्शन के साथ ऐसा सम्यग्ज्ञान सदा होता है। भगवान आत्मा के श्रद्धागुण की सम्यग्दर्शनपर्याय ज्ञान-आनंद और शांति के अपूर्व वेदनसहित प्रगट होती है। जीवादि सात तत्त्व और उसमें पर से भिन्न अपना शुद्धात्मा, उसे सम्यग्दृष्टि जानता है और उसकी श्रद्धा करता है। सामान्य और विशेष दोनों की विपरीततारहित प्रतीति सम्यग्दृष्टि को है। अकेला सामान्य माने और विशेष को न माने, अथवा अकेला विशेष माने, किंतु सामान्य को न माने तो तत्त्वश्रद्धा सच्ची नहीं होती। वस्तु स्वयं सामान्य-विशेषस्वरूप है, उसे विपरीतता के बिना ज्यों की त्यों जानकर श्रद्धा करना चाहिये। धर्मी के श्रद्धा-ज्ञान में विपरीतता या संशयादि दोष नहीं हैं। हमने अपने आत्मा को जाना है या नहीं, हमें सम्यग्दर्शन होगा या नहीं ?—ऐसा संशय धर्मात्मा को नहीं होता। जहाँ ऐसा संशय हो, वहाँ तो अज्ञान है। धर्मी तो अपनी दशा को निःशंक जानता है

कि अपूर्व आनंद के वेदनसहित हमें सम्यग्दर्शन हुआ है, आत्मा की स्वानुभूति हुई है, सर्वज्ञदेव ने जैसा आत्मा जाना, वैसा ही अपना आत्मा हमने अनुभव सहित जाना है; उसमें अब कोई शंका नहीं है। ऐसे श्रद्धा-ज्ञान द्वारा मोक्षमार्ग की आराधना होती है। आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान बिना कोई जीव भले ही द्रव्यलिंगी साधु हो, परंतु उसके अंतर में संशयादि दोष बने ही रहते हैं। जहाँ सम्यग्ज्ञान, वहाँ आत्मा का संशय नहीं; और जहाँ आत्मा का संशय, वहाँ सम्यग्ज्ञान नहीं। 'जहँ शंका तहँ गिन संताप, ज्ञान तहाँ शंका नहिं थाप' ज्ञानी जीव आत्मस्वरूप में निःशंकित हैं, और इसलिये मरणादि भयरहित हैं।

गुणवंत ज्ञानी की भक्ति किसप्रकार होती है ?

ज्ञानी के गुणों को पहिचानने पर उसके प्रति जो महान प्रमोदभाव जागृत होता है और अपना आत्मा भी वैसे गुण प्रगट करने के लिये प्रेरित होता है, वह भक्ति है। यह भक्ति मात्र बाह्य वैभव में या नृत्य-गायन आदि में पूर्ण नहीं हो जाती, परंतु इस भक्ति के साथ का ज्ञान ज्ञानी के अंतर में उतरकर उसके गुणों को खोजता है और अपने में वैसे गुण प्रगट करके ही रहता है। इसप्रकार गुण द्वारा गुणवंत-ज्ञानी की सुंदर भक्ति होती है। श्री कुन्दकुन्द स्वामी ने समयसार की 31वीं गाथा में ऐसी भक्ति बतलायी है। ज्ञान के बल से यहाँ भरतक्षेत्र में बैठे-बैठे सिद्ध-भगवंतों की या विदेहक्षेत्र के करोड़ों-अरबों ज्ञानियों की भक्ति हम सब कर सकते हैं... इस गुणभक्ति में क्षेत्र का अंतर बाधक नहीं होता।

परमागम का मधुर प्रसाद

शुद्ध चैतन्य की प्रकाशक जिनवाणी परमागम में गुँथी हुई है; अत्यंत बहुमानपूर्वक वह जिनवाणी (समयसारादि) सोनगढ़ के भव्य परमागम मंदिर में उत्कीर्ण की गई है। जिसका निर्माण-कार्य द्रुतगति से पूर्णता की ओर प्रगति कर रहा है और मंगल-महोत्सव की तैयारियाँ होने लगी हैं। आगामी फाल्गुन शुक्ला 13 को श्री परमागममंदिर में महावीर भगवान की प्रतिष्ठा का शुभमुहूर्त निकला है। मात्र परमागम ही नहीं, परमागम के साथ-साथ उसके प्रणेता श्री महावीर भगवान भी पधारेंगे और पंचकल्याणक-महोत्सवपूर्वक परमागम में विराजमान होंगे... भगवान द्वारा भाषित परमागम में जो मधुर चैतन्यप्रसाद भरा है और जिसका अपूर्व स्वाद पूज्य स्वामीजी हमें प्रतिदिन चखाते हैं, उसकी थोड़ी सी वानगी आत्मधर्म में दी जाती है। पहले भी आत्मधर्म में परमागम का मधुर प्रसाद दे चुके हैं और यहाँ श्री समयसार एवं अष्टप्राभृत के प्रवचनों में से दिया जा रहा है। आगामी पूरे वर्ष तक 'परमागम के मधुर प्रसाद' का यह विभाग चालू रहेगा। सर्व जिज्ञासु आनंद से परमागम का लाभ लेंगे ऐसी आशा है।

[—सम्पादक]

❀ सम्यग्दृष्टि को अपने सम्यक्त्व का निर्णय तो स्वसंवेदन-प्रत्यक्ष द्वारा हो जाता है; यह निर्णय सर्व सम्यग्दृष्टियों को अवश्य होता है; और पर के सम्यक्त्व का निर्णय भी अनुमानादि द्वारा हो सकता है।

❀ सम्यक्त्व के साथ की, दूसरे गुणों की निर्मल पर्यायों द्वारा (शांति के वेदनादि द्वारा) सम्यक्त्व को पहिचानना, वह व्यवहार है।

❀ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमित हुई निर्ग्रंथमूर्ति, वह जैनदर्शन का मार्ग है। ऐसे

वीतरागमार्ग का श्रवण करके उसकी प्रतीति करनी चाहिये, और उससे विरुद्ध मार्ग को नहीं मानना चाहिये। ऐसे यथार्थ मार्ग की प्रतीतिपूर्वक शुद्ध ज्ञान की अनुभूति, वह सम्यक्त्व का लक्षण है। वह धर्म का मूल है।

❀ अहा, सम्यक्त्व के साथ की अनुभूति में तो अतीन्द्रिय आनंद है, वह अनुभूति स्वसंवेदन-प्रत्यक्ष है, राग से पार है। ऐसी निःशंक अनुभवदशा के बिना सम्यक्त्व नहीं होता।

❀ भेदज्ञान और सम्यग्दर्शन होने पर, धर्मी को ऐसा स्वाद आया कि अहा! यह अतीन्द्रिय महा आनंद और शांति के स्वादरूप जिसका वेदन हुआ है, वही मेरा स्वरूप है—वहीं मैं हूँ; अनादिकाल से राग-द्वेष-अशांति का जो स्वाद लिया—वह मैं नहीं हूँ, वह मेरा स्वरूप नहीं है। इसप्रकार परभावों से अत्यंत भिन्न अपने चैतन्यस्वाद का वेदन, वह सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन के साथ अनंत गुण की निर्मलता का वेदन है। स्वसंवेदन में अभेदरूप से अनंतगुण के आनंद का स्वाद भरा है।

❀ धर्मी का उत्साह अपने धर्म में है। ज्ञानचेतनास्वरूप जो अपना स्वभाव है—वह धर्म है, उसी में धर्मी का प्रेम और उत्साह है। राग में या राग के फल में धर्मी का उत्साह नहीं है। उसे मोक्षदशा की साधना का उत्साह है, रत्नत्रयमार्ग का उत्साह है; राग का-पुण्य का-संसार का उसे उत्साह नहीं है।

❀ धर्म की साधना करनेवाले दूसरे धर्मात्मा के प्रति सम्यग्दृष्टि को अत्यंत प्रेम आता है; पंचपरमेष्ठी के प्रति प्रमोद आता है। सांसारिक प्रेम की अपेक्षा धर्मी को धर्म का प्रेम और उत्साह अधिक होता है। अंतर में उसे शुभराग से भी पार चैतन्यतत्त्व की परम प्रीति है। चैतन्यस्वरूप के श्रद्धा-ज्ञान-आचरणरूप जो ज्ञानचेतना है, वही परमार्थ धर्म है; वह जैनशासन है; और ऐसे रत्नत्रयवंत निर्ग्रंथ मुनिराज का दर्शन, वह दर्शन का मार्ग है, वह जैनमार्ग है।

❀ जिसे स्वभाव की प्राप्ति का अनुराग हुआ, उसे संसार के ओर की रुचि हट गई, वह संसारभाव से विरक्त हुआ और चैतन्य के वीतरागभावरूप मोक्षमार्ग के प्रति उत्साहित हुआ।—ऐसा संवेग और निर्वेद धर्मात्मा को होता है। ज्ञानचेतना का आत्मधर्म का जिसे

प्रेम हुआ है, उसके चैतन्यरस का जिसने आस्वादन किया है, वह अब अन्य किसी से प्रेम नहीं करेगा। चैतन्य का अमृतरस चख लेने के बाद विभाव के विष की कौन इच्छा करेगा ?

❀ धर्मी को पर्याय में जितने रागादि हैं, उनका भी वेदन है, और उसे जानता भी है; परंतु उसी समय राग से भिन्न चिदानंदस्वभाव का संचेतन करनेवाली जो ज्ञानचेतना है, उस ज्ञानचेतना के बल से धर्मी ऐसा अनुभव करता है कि मेरी ज्ञानचेतना में रागादि का वेदन नहीं है, ज्ञानचेतना तो आनंद का ही वेदन करनेवाली है। मेरी ज्ञानचेतना के परिणमन में किसी कर्म का कर्तापना या किसी कर्मफल का भोक्तापना नहीं है।—ऐसी ज्ञानचेतना धर्मात्मा को होती है। उसके आत्मा में निरंतर आनंद की वर्षा होती रहती है।

❀ वर्षा होने पर लोग कैसे प्रसन्न हो जाते हैं ? वास्तव में आत्मा में आनंदरस की धारा बरसे, वह अपूर्व है; उसके द्वारा अनादिकाल के मिथ्यात्व की जलन मिट जाती है और धर्म के अंकुर फूटते हैं, मोक्ष की फसल तैयार होती है। भाई, एकबार स्वसन्मुख होकर अपने निरालंबी चैतन्य-गगन में से आनंद की वर्षा कर।

❀ अरे जीव! ऐसे भयंकर दुःख से भरे हुए भवभ्रमण में तुझे परमसुख का मार्ग बतलानेवाला सुंदर वीतरागमार्ग प्राप्त हुआ, सच्चे देव-गुरु का उपदेश मिला, तो अब चैतन्यतत्त्व की अगाध महिमा को लक्षगत करके उसमें उपयोग को लगा। स्वसन्मुख होने पर जो अपूर्व सम्यग्दर्शन हुआ, वहाँ धर्मी को पूर्णता की साधना का परम उल्लास होता है; अंतर में तो चैतन्य की अतीन्द्रिय शांतिरूप प्रशम है, और बाह्यचिह्न के रूप में भी शांतभावरूप प्रशम होता है। अहा, मेरा चैतन्यतत्त्व प्रशांत, अनंत सुखमय है—उसका जहाँ स्वसंवेदन हुआ, वहाँ कषाय भी एकदम शांत हो जाते हैं।

❀ जगत में वे ही संत सुखी हैं कि जो पर से भिन्न आनंदस्वरूप आत्मा का स्वाद लेते हैं और जिन्होंने अपने अंतर में चैतन्य की अपार रिद्धि-सिद्धि देखी है। ऐसे चैतन्य की प्रतीति के बिना जीव दुखी हैं—फिर भले ही वे पुण्य करके स्वर्ग में गये हों। जिसने चैतन्य का निधान अपने में देखा और महा आनंद का स्वाद लिया, उसे संसार में कहीं मरणादि का भय नहीं है। अनंतगुणों से सुशोभित चैतन्यजीवन उसने प्राप्त कर लिया है।

❀ — ऐसे धर्मात्मा के अंतर को धर्मात्मा ही जानते हैं, बाह्यदृष्टि से देखनेवाले उसे नहीं जान सकते। जिसे अंतर की गहराई से देखना आता है, वही धर्मात्मा के हृदय को जान सकता है।

❀ 'ज्ञायकभाव' आत्मा है, वह ज्ञायकभाव राग-द्वेषरूप नहीं है; शुभ-अशुभभावरूप जो कषायचक्र है, उस रूप ज्ञायकभाव कदापि नहीं हो गया है; पर्याय को अंतर्मुख करके ऐसे ज्ञायकभावरूप से स्वयं अपने आत्मा की उपासना करना—वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है—वही मोक्षमार्ग है।

❀ स्वसंवेदन से आत्मा स्वयं अपने को जानता है, तब आत्मा स्वयं ज्ञायकरूप से ज्ञाता है, और स्वयं ही स्वज्ञेय है—इसप्रकार ज्ञाता-ज्ञेय का अनन्यपना है—अभेदपना है, तब 'ज्ञायक' स्वयं स्वरूपप्रकाशनरूप से अपने को प्रकाशित करता है—जानता है— अनुभव करता है। पर्याय अंतर्मुख होकर अभेद हुई, वहाँ ज्ञायकभाव की उपासना हुई, उसे 'शुद्ध' कहा जाता है। आत्मा की ऐसी उपासना, वह मोक्षमार्ग है, उसमें राग-द्वेष या पुण्य-पाप नहीं हैं, इसलिये कहा है कि ज्ञायकभाव शुभाशुभभावरूप परिणमित नहीं होता।

❀ अरे जीव! तू अपने आनंदमय ज्ञायकतत्त्व को भूलकर अनादिकाल से शुभाशुभभाव के कषायचक्र में दुखी हुआ। उस कषायचक्र का मिट जाना यद्यपि कठिन है, परंतु असंभव नहीं है। जहाँ अंतर्मुख होकर स्वयं अपने को ज्ञायकस्वभावरूप से अनुभव में लिया, वहाँ पर्याय ज्ञायकस्वभाव में अभेद हो गई और पुण्य-पाप का कषायचक्र उसमें से छूट गया। उसका नाम शुद्धात्मा की उपासना है, वह सम्यग्दर्शन है। यह आत्मा के निजवैभव की प्राप्ति की रीति है।

❀ अहा, सम्यग्दर्शन अलौकिक गंभीर वस्तु है; सम्यग्दर्शन होने पर सर्वज्ञदेव द्वारा कहे हुए आत्मा का और समस्त तत्त्वों का निर्णय हो जाता है। अहा, जिनधर्म की गंभीरता का अज्ञानी पार नहीं पा सकते, गुरुगम से जिनप्रवचन का सच्चा रहस्य समझ में आता है कि अहा, जिनप्रवचन तो आत्मा का स्वरूप जिन-समान बतलाता है। 'जिनपद निजपद एकता, भेदभाव नहीं कोई'—ऐसे आत्मा को लक्षगत करके स्वसन्मुखतापूर्वक उसका अनुभव करना, वह जैनशासन का हार्द है, उसमें आत्मा के महा आनंद का वेदन है। ऐसे

सम्यग्दृष्टि को दूसरे धर्मात्माओं के प्रति अत्यंत प्रेम-वात्सल्य होता है। दूसरे धर्मात्मा आगे बढ़ जायें, वह देखकर उसे ईर्ष्या नहीं होती परंतु प्रसन्नता होती है, बहुमान आता है; सर्व प्रकार से उसकी सहायता करता है। वह वीतरागी देव-गुरु-धर्म का दास होकर वर्तता है, उनके प्रति उसे अत्यंत भक्ति और आदरभाव आता है। ऐसा धर्मप्रेम धर्मी को होता है। रत्नत्रयधर्म की परम प्रीति से जगत में उसका प्रभाव फैले वैसा करता है, और अपने में भी रत्नत्रयधर्म की वृद्धि हो, तदनुसार प्रवर्तता है।

❀ भाई, ऐसा मनुष्यपना और आत्मसाधना का ऐसा अवसर—उसका एक-एक क्षण अमूल्य है; उसमें आत्मनिर्णय करके अपना कार्य कर लेना योग्य है।—यही आत्मा का सच्चा हितरूप कार्य है। स्वानुभूति द्वारा सम्यग्दर्शनादि कार्य किया, तभी आत्मा सच्चा कर्ता हुआ, तब वह धर्म का कर्ता हुआ, अर्थात् मोक्ष का साधक, धर्मात्मा हुआ। इससे पूर्व तो अज्ञानवश राग का कर्ता था, और धर्म का कर्ता नहीं हुआ था। अब राग का अकर्ता होकर धर्म का कर्ता हुआ है; इसलिये वही सच्चा कर्ता है।

❀ जीव का कोई भी भाव-वह धर्म है या नहीं ? वह मोक्ष का कारण है या नहीं ?—उसका निर्णय करने का एक सरल माप यह है कि—

  ❀ वह भाव जीव के पाँच भाव में से कौन सा भाव है ?

  ❀ यदि वह भाव औदयिकभाव है तो शीघ्र समझ लेना चाहिये कि वह धर्म नहीं है, वह मोक्षमार्ग नहीं है।

  ❀ जितने उदयभाव हैं, उनमें से कोई भी भाव मोक्ष का कारण नहीं है, इसलिये वह धर्म नहीं है।

  ❀ बंध के कारणरूप जो भी भाव हों, वे सब उदयभाव हैं, उन्हें मोक्ष का साधन नहीं मानना चाहिये, उन्हें धर्म नहीं मानना चाहिये।

  ❀ शुद्धात्मा की श्रद्धा-ज्ञान-अनुभूति के बिना बाहरी या शास्त्रों का चाहे जितना ज्ञान हो, वह वास्तव में ज्ञान नहीं है, मोक्षमार्ग में उसका कोई मूल्य नहीं है। मोक्षमार्ग का मूल तो सम्यग्दर्शन है। आत्मा का परम गंभीर स्वरूप ज्ञान में यथावत् धारण

करके उसकी सम्यक्श्रद्धा करे, उस जीव को अन्य जानकारी भले अल्प हो, तथापि वह मोक्ष के मार्ग में है, आराधक है। इसलिये हे भव्य! दूसरा कुछ तुझे आता हो या नहीं, परंतु आत्मतत्त्व की सम्यक्श्रद्धा बराबर बनाये रखना। सम्यग्दर्शन द्वारा भी तेरा आराधकपना बना रहेगा।

❀ किसी जीव को सम्यग्दर्शन हो और चारित्रदशा-मुनिदशा वर्तमान में न हो, तथापि वह आराधक है, और अल्पकाल में चारित्रदशा प्रगट करके वह मोक्ष प्राप्त करेगा। परंतु जिस जीव को सम्यग्दर्शन नहीं है, वह तो अनंत काल में भी मोक्ष को प्राप्त नहीं होता। सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान-चारित्र आदि कोई धर्म सच्चे नहीं होते। इसलिये सम्यग्दर्शन को धर्म का मूल जानकर हे भव्य! तू उसकी आराधना में दृढ़ रहना।

❀ अहा! सम्यग्दर्शन तो जगत का अलौकिक रत्न है... वह निर्विकल्प चैतन्य का स्वाद चखाता है। ऐसे सम्यग्दर्शन-रत्न के मूल्य से तो मोक्ष की प्राप्ति होती है। सम्यक्त्व के बिना शास्त्रज्ञान या तप करे तो भी वह जीव मिथ्यादृष्टिरूप से संसार में ही परिभ्रमण किया करता है। सम्यग्दर्शनरूपी पवित्र जल तो पाप का नाश करके उत्कृष्ट ज्ञान की प्राप्ति कराता है। ऐसे सम्यक्त्व का पवित्र प्रवाह जिसके अंतर में प्रवाहित है, वह आराधक जीव ज्ञानादि गुणों की वृद्धि करते-करते मोक्ष को प्राप्त करता है।—इसप्रकार सम्यक्त्व की अपार महिमा जानकर उसकी आराधना करो। आत्मा की अपूर्व शांति का वेदन ही सच्ची आराधना है।

चैतन्य-विभूति

अरे, कहाँ मेरी चैतन्य विभूति! और कहाँ यह इन्द्रपद इत्यादि बाह्य पुण्य के ठाठ! पुण्य, यह तो चैतन्य की विकृति का फल है; इसमें मेरी महत्ता नहीं है; मेरी महत्ता तो मेरे चैतन्य की विशुद्धता में ही है। चैतन्य की महत्ता में जो अतीन्द्रिय आनंद का समुद्र उछलता है, उसके समक्ष जगत के किसी भी फल की महत्ता ज्ञानी को नहीं है। ज्ञानी चैतन्य की विभूति के समक्ष जगत की विभूति को धूल के समान समझकर, उसका त्याग करके चैतन्य की साधना करते हैं।

हरिवंश-पुराण के वैराग्य प्रसंग

गजकुमार-वैराग्य

देवकी माता के आठवें पुत्र गजकुमार। वे श्रीकृष्ण के छोटे भाई तथा नेमप्रभु के चचेरे भाई थे।

अनेक राजकन्याओं के साथ तथा सोमशर्मा ब्राह्मण की सुपुत्री सोमा के साथ गजकुमार का विवाह निश्चित हुआ... उन्हीं दिनों विहार करते-करते श्री नेमितीर्थंकर गिरनार पधारे। जिनराज का आगमन सुनकर सब दर्शन करने के लिये चल दिये। गजकुमार ने जाना कि अहा! यह तो मेरे भाई हैं, तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव पधारे हैं, ऐसा विचार कर वे भी हर्षपूर्वक प्रभु के दर्शन को चल दिये। प्रभु के दर्शन से वे बहुत प्रसन्न हुए। प्रभुजी के श्रीमुख से तीर्थंकरादि के पावन चारित्र का श्रवण करके अतिशय वैराग्यमय होकर, शीघ्र ही माता-पिता को छोड़कर जिनेन्द्रदेव का शरण लिया; संसार से भयभीत और प्रभु के महा भक्त ऐसे वैरागी गजकुमार ने भगवान की आज्ञापूर्वक दिगम्बर दीक्षा ग्रहण की, और चैतन्यध्यान में तल्लीनतापूर्वक महान तप करने लगे। गजकुमार के साथ जिन राजकन्याओं की सगाई हुई थी, उन्होंने भी दीक्षा ले ली।

'गजकुमार ने मेरी पुत्री का जीवन बर्बाद कर दिया'—ऐसा मानकर सोमशर्मा ब्राह्मण अत्यंत क्रोधित हुआ। साधु होना था तो मेरी पुत्री के साथ सगाई क्यों की?—इसप्रकार क्रोध में अंध सोमशर्मा ने गजस्वामी-मुनिराज के मस्तक पर अग्नि जलाकर घोर उपसर्ग किया... मस्तक जलने लगा... अत्यंत कोमल शरीर प्रज्वलित हो उठा....

परंतु गजकुमार तो घोर पराक्रमी थे!—मानों शांति का पर्वत हों! अग्नि से विचलित नहीं हुए। वे गंभीर मुनिराज तो स्वरूप की साधना में तल्लीन, अकेले प्रतिमायोग धारण करके खड़े हैं। बाहर मस्तक अग्नि में जल रहा है परंतु अंतर में आत्मा चैतन्य के परम शांतरस में

तल्लीन है। सर्व परीषहों को सहन करनेवाले मुनिराज, शूरवीरता से आराधना में दृढ़ रहते हुए, उसी समय क्षपकश्रेणी लगाकर, शुक्लध्यान द्वारा कर्मों को भस्म करके, केवलज्ञान और मोक्ष को प्राप्त हुए... नेमिनाथ प्रभु के तीर्थ में वे अन्तकृत केवली हुए। उनके केवलज्ञान और निर्वाण—दोनों कल्याणक देवों ने एक साथ मनाये।

गजकुमार के मोक्ष की बात सुनकर शीघ्र ही समुद्रविजय महाराज (नेमिनाथ प्रभु के पिताजी) आदि नौ भाईयों ने (वसुदेव के अतिरिक्त) संसार से विरक्त होकर जिनदीक्षा धारण कर ली। माताजी-शिवादेवी आदि ने भी दीक्षा ले ली। पश्चात् कई वर्षों तक विहार करते हुए श्री नेमिप्रभु पुनः गिरनार पधारे।

[आत्म-साधना के संबंध में गजकुमारस्वामी के महान पुरुषार्थ की यह घटना पूज्य गुरुदेवश्री को अत्यंत प्रिय है, और समय-समय पर प्रवचन में उसका भावभीना वर्णन करते हैं, तब मुमुक्षु का आत्मा चैतन्य के पुरुषार्थ से डोल उठता है, और मोक्ष के अडोल-अप्रतिहत साधक के प्रति हृदय श्रद्धा से झुक जाता है।]

❀❀❀

नेमिप्रभु पुनः गिरनार पधारे, और बलदेव-वासुदेव एवं प्रद्युम्न आदि प्रभु के दर्शनार्थ आये। फिर क्या हुआ? उसकी कथा अब पढ़िये!—

द्वारका नगरी जल गई.... तब

[द्वारका भले जल गई, परंतु धर्मात्मा की शांत पर्याय कभी नहीं जलती]

गिरनार पर नेमप्रभु के श्रीमुख से दिव्यध्वनि का वीतरागी उपदेश सुनने के पश्चात् बलभद्र ने विनयपूर्वक भगवान से पूछा कि—हे देव! इस अद्भुत द्वारकापुरी की रचना कुबेर ने की है, तो अब इसकी स्थिति कितने वर्ष की है? जो वस्तु कृत्रिम हो, उसका नाश होता ही है। तो यह नगरी अपने-आप विलय को प्राप्त होगी या किसी के निमित्त से? वासुदेव का परलोकगमन किस कारण से होगा?—महापुरुष का शरीर भी सदा नहीं रहता। और मुझे संयम की प्राप्ति कब होगी? मुझे संसार-संबंधी अन्य पदार्थों का ममत्व तो अल्प है, मात्र एक भाई—श्रीकृष्ण के स्नेह-बंधन से बँधा हुआ हूँ।

नेमिप्रभु ने कहा—आज से बारह वर्ष बाद मद्यपान से उन्मत्त यादवकुमार द्वीपायन मुनि को क्रोधाविष्ट करेंगे, और वे द्वीपायन मुनि (बलभद्र के मामा) क्रोधावेश में इस द्वारकानगरी को भस्म कर देंगे। महाभाग्य श्रीकृष्ण जब कौशाम्बी के वन में सो रहे होंगे, तब उन्हीं के भाई जरतकुमार के बाण से उनका परलोकगमन होगा। उसके छह महीने पश्चात् तुम संसार से विरक्त होकर संयमदशा धारण करोगे।

जन्म-मरण के दु:ख का कारण तो राग-द्वेष भाव है; और जब पुण्यप्रताप का क्षय होता है, तब बाह्य में अनेक कारण मिलते हैं। वस्तु के स्वभाव को जाननेवाले ज्ञानी पुण्य-प्रताप के समय हर्ष नहीं करते और नाश के समय विषाद नहीं करते। वासुदेव के वियोग से तुम्हें (बलभ्रद को) अत्यधिक खेद होगा, पश्चात् प्रतिबुद्ध होकर भगवती दीक्षा धारण करोगे, और पाँचवें ब्रह्म स्वर्ग में जाओगे। वहाँ से मनुष्यभव प्राप्त करके निरंजन होंगे।

प्रभु की बात सुनकर द्वीपायन तो तुरंत मुनि दीक्षा लेकर द्वारका से बहुत दूर विहार कर गये।

तथा जरतकुमार भी अपने हाथ से हरि की मृत्यु होगी, ऐसा सुनकर बहुत दु:खित हुआ और परिवार को छोड़कर बहुत दूर ऐसे वन में रहने लगा कि जहाँ हरि का दर्शन भी न हो। श्रीकृष्ण के स्नेहवश वह जरतकुमार बहुत व्याकुल हो गया, हरि उसे प्राण के समान प्रिय थे, इसलिये वह दूर-दूर वन में जाकर जंगल पशुओं की भाँति रहने लगा।

अन्य सब यादव भी द्वारका की होनहार सुनकर चिंता से दु:खित-हृदय द्वारका आये। द्वारका तो जैनधर्मियों की नगरी, महान दया-धर्म से भरपूर, यहाँ माँस-मदिरा कैसे? जहाँ बलदेव-वासुदेव का राज्य, वहाँ कुवस्तु की चर्चा कैसी? परंतु कर्मभूमि है, इसलिये कोई पापी जीव गुप्तरूप से मदिरादि सेवन करता हो!—ऐसा विचार कर बलदेव-वासुदेव ने द्वारका में घोषणा करवा दी कि कोई अपने घर में मांस-मदिरादि सामग्री न रखे; जिसके पास हो वह शीघ्र नगर से बाहर फेंक दे।—यह सुनकर जिनके पास मदिरादि सामग्री थी, उन्होंने वह कदम्बवन में फेंक दी और वहीं वह सूखने लगी।

फिर श्रीकृष्ण ने द्वारका के समस्त नरनारियों को वैराग्य धारण करने के लिये नगरी में घोषणा करवायी कि—मेरे पिता, माता, भाई, बहिन, पुत्र, पुत्री, स्त्री, और नगरजन—जिन्हें

दीक्षा धारण करना हो, वे शीघ्र जिनदीक्षा धारण करके अपना आत्मकल्याण करो, मैं किसी को नहीं रोकूँगा।

श्रीकृष्ण की यह बात सुनकर उनके पुत्र प्रद्युम्नकुमार, भानुकुमार आदि जो कि चरमशरीरी थे, उन्होंने दीक्षा ले ली; सत्यभामा, रुक्मिणी, जाम्बुवती आदि आठ पटरानियों ने और अन्य हजारों रानियों ने भी दीक्षा अंगीकार की; द्वारकानगरी की जनता में से बहुत से पुरुषों ने मुनिदशा धारण की, बहुत सी स्त्रियाँ आर्यिका हुईं। श्रीकृष्ण ने सबको प्रेरणा देते हुए कहा कि—संसार समान कोई समुद्र नहीं, इसलिये संसार को असार जानकर नेमिनाथ प्रभु द्वारा बतलाये हुए मोक्षमार्ग की शरण लो। मुझे तो इस भव में वैराग्य का योग्य नहीं है, ज्येष्ठ भ्राता बलदेव को मेरे प्रति मोह के वश अभी मुनिव्रत नहीं है—मेरे वियोग के बाद वे मुनिव्रत धारण करेंगे। इसलिये मेरे शेष समस्त भाईयों, यादवों, हमारे वंश के राजा, कुटुंबीजन, प्रजाजनों, सब इस क्षणभंगुर संसार का संबंध छोड़कर शीघ्र जिनराज के धर्म की आराधना करो, मुनि तथा श्रावक के व्रत धारण करो।

श्रीकृष्ण की यह बात सुनकर बहुत से जीव वैरागी होकर व्रत धारण करने लगे। किसी ने मुनिव्रत धारण किया, कोई श्रावक हुआ। सिद्धार्थ—जो कि बलदेव का सारथी था, उसने भी वैराग्यवश होकर बलदेव से दीक्षा की आज्ञा माँगी। तब बलदेव ने अपनी स्वीकृति देते हुए कहा कि श्रीकृष्ण के वियोग में जब मैं संतापित होऊँ, तब तुम देवलोक से आकर मुझे संबोधन करना। सिद्धार्थ ने यह बात मान ली और मुनिदीक्षा धारण की। द्वारका के दूसरे अनेक लोग भी बारह वर्ष व्यतीत करने के लिये द्वारका छोड़कर वन में चले गये, और व्रत-उपवास-दान-पूजादि में लीन रहने लगे। परंतु.... वे बारह वर्ष की गिनती भूल गये और बारह वर्ष समाप्त होने से पूर्व ही, बारह वर्ष समाप्त हो गये—ऐसा मानकर नगरी में आकर रहने लगे।—अरे होनहार!

इस ओर द्वीपायनमुनि जो कि दूर देश में विहार कर गये थे, वे भी भूल गये, और भ्रांतिवश बारह वर्ष पूरे हो गये हैं—ऐसा मान अवधि समाप्त होने से पूर्व ही द्वारका आ गये।—वह मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी मन में ऐसा विचार करने लगे कि भगवान ने जो होनहार बतलायी थी, वह टल गई है।—ऐसा विचार कर उन्होंने द्वारका के निकट गिरि के पास आतापनयोग धारण किया।

एकबार श्रीकृष्ण के पुत्र शम्बुकुमार आदि यादवकुमार वनक्रीड़ा करने गये थे। वे थक गये और उन्हें प्यास लगी; इसलिये कदम्बवन के कुण्ड में पानी गालकर पिया। पहले यादवों ने जो मदिरा नगर से बाहर फेंकी थी, उसका पानी बह-बहकर इस कुण्ड में एकत्र हुआ था, उसमें महुए के फल पड़े हुए थे और सूर्य के ताप से वह पानी मदिरा जैसा हो गया था। प्यासे यादवकुमारों ने वह पानी पिया—बस कदम्बवन की वह कादम्बरी (मदिरा) पीने से यादवकुमारों को नशा चढ़ने लगा और वे नशे में मस्त होकर अंटसंट बकने लगे तथा इधर-उधर झूमने लगे। द्वारका की ओर आते हुए मार्ग में उन्होंने द्वीपायन मुनि को देखा। देखते ही कहा; अरे, यह तो वही द्वीपायन है, जिसके द्वारा द्वारकानगरी का नाश होना था! अब वह हमसे बचकर कहाँ जायेगा? ऐसा कहकर वे कुमार निर्दयता से उन मुनि को पत्थर मारने लगे! इतने पत्थर मारे कि वह जमीन पर गिर पड़े।

फिर क्या था! द्वीपायन के क्रोध की सीमा न रही (अरे, होनहार!) क्रोध से तप्त होकर वे आँखें चढ़ाकर यादवों का नाश करने के लिये कटिबद्ध हुए। यादवकुमार भयभीत होकर दौड़े और दौड़ते-दौड़ते द्वारकानगरी में आये। समस्त नगरी में हलचल मच गई।

बलदेव-वासुदेव यह बात सुनते ही मुनि के पास क्षमा माँगने को दौड़े। ....और क्रोधाग्नि से प्रज्वलित जिसके चेहरे के सामने भी न देखा जा सके और जो कंठगतप्राण हैं—ऐसे भयंकर द्वीपायन ऋषि के समक्ष हाथ जोड़कर नमस्कार करके नगरी के लिये अभयदान माँगा। हे साधु! क्षमा करो! क्रोध को शांत करो। तप का मूल तो क्षमा है; इसलिये क्रोध का त्याग करके इस नगरी की रक्षा करो। क्रोध तो मोक्ष के साधनरूप तप को क्षणमात्र में जला देता है, इसलिये क्रोध को जीतकर क्षमा करो। हे साधु! बालकों के अविवेकी कृत्य के लिये क्षमा करो और हम पर प्रसन्न होओ!—इसप्रकार दोनों भाईयों ने प्रार्थना की।

— परंतु क्रोधी द्वीपायन ने तो द्वारकानगरी को जलाने का निश्चय कर लिया; दोनों उंगलियाँ ऊँची करके ऐसा सूचित किया कि तुम दोनों भाई ही बच सकोगे, दूसरा कोई नहीं।

तब उन दोनों भाईयों ने जाना कि बस, अब द्वारका का विनाशकाल निकट आ गया है। दोनों भाई खेद-खिन्न होकर द्वारका आये और अब क्या किया जाये, उसकी चिन्ता में पड़ गये। उसी समय शम्बुकुमार आदि अनेक चरमशरीरी राजकुमार तो नगर से निकलकर गिरि गुफा में

जा बसे। इधर मिथ्यादृष्टि द्वीपायन भयंकर क्रोधरूपी अग्नि द्वारा द्वारकापुरी को भस्म करने लगा। देवों द्वारा निर्मित द्वारकानगरी से अचानक ही अग्नि की ज्वालाएँ उठने लगीं। मैं निर्दोष था, फिर भी यादवों ने मुझे मारा, इसलिये अब मैं उन पापियों सहित समस्त नगरी को भस्म कर दूँगा।—ऐसे आर्तध्यानसहित तेजोलेश्या से द्वीपायन द्वारकानगरी को जलाने लगे। नगरी में चारों ओर विनाश का तांडव होने लगा। घर-घर में भय की छाया व्याप्त हो गई। अगली रात्रि में ही नगरजनों ने भयंकर स्वप्न देखा था कि पापी द्वीपायन, मनुष्यों एवं पशु-पक्षियों से भरी हुई सुन्दर द्वारकानगरी को जला रहा है। अग्नि में अनेक प्राणी जल रहे हैं, और अत्यंत करुण स्वर में विलाप कर रहे हैं... कोई हमें बचाओ रे बचाओ। ऐसा करुण चीत्कार द्वारका में पहले कभी नहीं हुआ था। बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, पशु और पक्षी सब अग्नि में जलने लगे, देवों द्वारा निर्मित द्वारकानगरी अति वेग के साथ अग्नि की लपेटों में भस्म होने लगी।

यहाँ कोई प्रश्न करे कि अरे! यह महान द्वारकापुरी, जिसकी देवों ने रचना की थी और अनेक देव जिसके सहायक थे, वे सब उस समय कहाँ गये? किसी ने द्वारका को क्यों नहीं बचाया?

उसका समाधान—हे भाई! सर्वज्ञ भगवान द्वारा देखी हुई भवितव्यता दुर्निवार है। जब ऐसी होनहार हुई, तब देव भी दूर हो गये। जहाँ भवितव्य ही ऐसा था, वहाँ देव क्या करते? यदि देव चले न जाते और नगरी की रक्षा करते तो वह क्यों जलती? जब नगरी के जलने का समय आया, तब देव भी चले गये... और समस्त नगरजन भयभीत होकर बलदेव तथा वासुदेव श्रीकृष्ण की शरण में आकर अतिशय व्याकुलता से पुकार करने लगे—हे नाथ! हे कृष्ण! हमारी रक्षा करो! हमें बचाओ!!

तब बलभद्र और श्रीकृष्ण ने गढ़ तोड़कर समुद्र के जल से आग बुझाने की तैयारी की... परंतु हे देव! वह पानी भी तेल जैसा बन गया और उससे अग्नि अति प्रज्वलित होने लगी। जब अग्नि के शांत होने की कोई आशा न रही, तब दोनों भाईयों ने अपने माता-पिता को नगर से बाहर निकालने की चेष्टा की। रथ में माता-पिता को बैठाकर घोड़े जोते, परंतु वे नहीं चले! हाथी जोते, वे भी नहीं चले! रथ का पहिया पृथ्वी में धँस गया... अंत में हाथी-घोड़ों से रथ नहीं चलेगा, ऐसा मानकर श्रीकृष्ण और बलभद्र दोनों भाई स्वयं रथ में जुत गये और पूरी

शक्ति लगाकर खींचने लगे... परंतु रथ नहीं चला। वह तो जहाँ था, वहीं जम गया। जब बलदेव बल करने लगे, तब नगरी के द्वार अपने आप बंद हो गये, दोनों भाईयों ने पाद-प्रहार कर-करके द्वार तोड़े कि इतने में आकाश से देववाणी हुई कि मात्र तुम दोनों भाई द्वारका से निकल सकोगे, तीसरा कोई नहीं।—अपने माता-पिता को भी तुम नहीं बचा सकते।

तब माता-पिता ने गद्गद् भाव से कहा—हे पुत्रो! तुम शीघ्र यहाँ से चले जाओ, हमारी मृत्यु निश्चित है; अब एक डग भी नहीं चला जाता। इसलिये तुम जाओ... तुम यादव वंश के तिलक हो। तुम जीवित रहोगे तो सब हो जायेगा। दोनों भाई अत्यंत हताश होकर, माता-पिता के चरण छूकर, वंदना करके, उनकी आज्ञा लेकर नगर से बाहर चले गये। (अरे, तीन खंड के अधिपति माता-पिता को भी न बचा सके!) बाहर आकर देखते हैं कि—सुवर्ण एवं रत्नमयी द्वारकानगरी धांय-धांय जल रही है... घर-घर में आग लगी है, राजमहल भस्म हो रहे हैं। तब दोनों भाई एक-दूसरे के गले लगकर रोने लगे... और दक्षिण देश की ओर चल दिये (देखो, यह पुण्य-संयोग की दशा!)

इस ओर द्वारकापुरी में पिता वसुदेव आदि अनेक यादव, उनकी रानियाँ आदि प्रायोपगमन-संन्यास धारण करके देवलोक को गये। बलदेव के भी कई पुत्र आदि जो तदभव मोक्षगामी थे, तथा संयम धारण करने का जिनको भाव था, उन्हें तो देव नेमिनाथ भगवान के पास ले गये, अनेक यादव और उनकी रानियाँ जो धर्मध्यान के धारक थे और जिनका अंत:करण सम्यग्दर्शन द्वारा शुद्ध था, उन्होंने प्रायोपगमन-संन्यास धारण कर लिया, इसलिये उनको उपसर्ग आर्त-रौद्रध्यान का कारण न हुआ, धर्मध्यानपूर्वक देह का त्याग करके वे स्वर्ग में गये। देवकृत-मनुष्यकृत-तिर्यंचकृत या प्रकृति द्वारा उत्पन्न—ऐसे चार प्रकार के उपसर्ग हैं, वे मिथ्यादृष्टि जीवों को तो रौद्रध्यान का कारण होते हैं, परंतु सम्यग्दृष्टि जीवों को कदापि कुभाव के कारण नहीं होते। चाहे जब, चाहे जिसप्रकार मृत्यु आये, तथापि उन्हें धर्म की दृढ़ता रहती है। अज्ञानी को मरण-समय क्लेश होता है, इसलिये कुमरण करके वह कुगति में जाता है। जो जीव सम्यग्दर्शन द्वारा शुद्ध हैं, जिनके परिणाम उज्ज्वल हैं, वे जीव समाधिपूर्वक देहत्याग करके स्वर्ग में जाते हैं और परंपरागत मोक्ष प्राप्त करते हैं। जो जिनधर्मी हैं, उन्हें ऐसी भावना रहती है कि यह संसार अनित्य है, इसमें जो पैदा हुआ है , वह अवश्य मरण को प्राप्त

होता है;—इसलिये हमें समाधि-मरण हो; उपसर्ग आये, तब हम कायर न हों।—इसप्रकार सम्यग्दृष्टि को सदा समाधि की भावना रहती है। धन्य है उन जीवों को—जो कि अग्नि की प्रचंड ज्वालाओं के बीच शरीर भस्म होने पर भी समाधि को नहीं छोड़ते! देह को छोड़ देते हैं परंतु समता को नहीं छोड़ते! अहा, सत्पुरुषों का जीवन निज-पर के कल्याण के लिये ही है, मृत्यु आये तो भी वे किसी के प्रति द्वेष नहीं करते; क्षमाभाव सहित देह का त्याग करते हैं—यह संतों की रीति है।

अरे, द्वीपायन! जिनवाणी की श्रद्धा छोड़कर तूने अपना तप भ्रष्ट किया और मृत्यु को भी बिगाड़ा! तूने अपना घात किया और अनेक जीवों का भी प्रलय किया। क्रोध के वशीभूत होकर तू स्व-पर के विनाश का कारण हुआ। जो पापी परजीवों का घात करता है, वह भव-भव में अपना घात करता है। जीव जहाँ कषायों के आधीन हुआ, वहाँ वह अपना घात तो कर ही चुका है—फिर दूसरे जीव का घात हो या न हो, वह उसके प्रारब्ध के आधीन है। परंतु जीव ने उसे मारने का विचार किया, वहाँ उसे जीवहिंसा का पाप लग गया और वह आत्मघाती हो गया। दूसरों को मारने का भाव करना, वह तो धधकता हुआ लोहे का गोला दूसरे को मारने के लिये हाथ में लेने के समान है—अर्थात् सामनेवाला जीव मरे या नहीं मरे, परंतु स्वयं तो जल ही जायेगा। उसीप्रकार कषायवश जीव प्रथम तो स्वयं अपने को ही कषायाग्नि द्वारा जलाता है। किसी को तप निर्वाण का कारण होता है, परंतु अज्ञान के कारण क्रोधी द्वीपायन को तो तप भी अनंत संसार का कारण हुआ। क्रोध से दूसरे का बुरा चाहनेवाले जीव स्वयं दुःख की परम्परा भोगते हैं। इसलिये जीव को क्षमाभाव धारण करना योग्य है।

क्रोध में अंध होकर द्वीपायन-तपस्वी ने भवितव्यतावश द्वारकानगरी को भस्म किया; जिसमें कितने ही नर-नारी, बालक-वृद्ध एवं पशु-पक्षी जल गये; अनेक जीवों से भरी हुई द्वारका नगरी छह मास तक जलती रही... अरे, धिक्कार है ऐसे क्रोध को—कि जो स्व-पर का नाश करके संसार को बढ़ानेवाला है! क्रोध के कारण जीव संसार में अनेक दुःख भोगता है। द्वीपायन ने भगवान नेमिनाथ के वचनों की श्रद्धा का उल्लंघन करके भयंकर क्रोध द्वारा अपना अहित किया, और द्वारकानगरी को भस्म कर दिया। ऐसे अज्ञानमय क्रोध को धिक्कार है!

देखो तो सही, यह संसार की दशा! बलदेव और श्रीकृष्ण वासुदेव जैसे महान पुण्यवंत

पुरुषों के पास कैसी महान विभूति थी!—जिनके पास सुदर्शनचक्र जैसे अनेक महा रत्न थे, हजारों देव जिनकी सेवा करते थे, और हजारों राजा जिन्हें मस्तक झुकाते थे—भरतक्षेत्र के ऐसे भूपति पुण्य समाप्त होने पर रत्न-रहित हो गये, नगरी और महल सब जल गये, समस्त परिवार का वियोग हो गया! मात्र प्राण ही जिनका परिवार है... कोई देव भी जिनकी द्वारकीनगरी को जलने से बचा नहीं सके!—ऐसे दोनों भाई अत्यंत शोकाकुल हो, जीने की आशा में पांडवों के पास पहुँचने के लिये दक्षिण मथुरा की ओर चल दिये। जिन्हें स्वयं राज्य से निकाल दिया था, उन्हीं की शरण में जाने का समय आया!—वाह रे संसार! पुण्य-पाप के ऐसे विचित्र खेल देखकर हे जीव! पुण्य की आशा में न बैठे रहना, शीघ्र आत्महित की साधना करना।

जन्म में या मृत्यु में अरु सुख में या दु:ख में,
संसार में या मोक्ष में, रे जीव! तू तो अकेला।

नये प्रकाशन

❀ श्री समयसार नाटक— (श्री पंडित बनारसीदासजी कृत) (द्वितीयावृत्ति)
पृष्ठ संख्या 470, मूल्य 6.00, पोस्टेज अलग।

❀ श्री अष्टपाहुड (श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव कृत) (द्वितीयावृत्ति)
पृष्ठ संख्या 380, मूल्य-5.00, पोस्टेज अलग।

❀ श्री समयसार-प्रवचन (भाग-3) (द्वितीयावृत्ति) श्री समयसार के जीव-अजीव अधिकार पर पूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रवचन।
पृष्ठ 512, मूल्य - 5.00, पोस्टेज अलग।

सोनगढ़ में कुन्दकुन्द-कहान को-ऑ०
हाउसिंग सोसायटी

सहकारी स्तर पर टेनामेंट टाइप के साथ सुंदर निवास की योजना—

- पालीताणा रोड पर पहले जो कहाननगर को-ऑ. सोसायटी बनी है (जिसका निर्माण-कार्य 500 चौरस फुट में हुआ है) उसी के सामनेवाले मैदान में सेठ भगवानदास शोभालाल सागरवालों की बगल में इस सोसायटी का निर्माण होगा।
- प्रत्येक मकान में 700 चौरस फुट का निर्माण-कार्य होगा। एक दीवानखाना, एक शयनकक्ष, एक रसोईघर, एक स्नानागार, एक संडास, गेलरी, बरामदा तथा दोनों ओर स्वतंत्र खुली जगह रहेगी।
- सोसायटी में करीब 25 मकान बनेंगे; प्रत्येक मकान की लागत करीब 27000 (सत्ताईस हजार) होगी।
- जो मालिकी के आधार पर सदस्य बनेंगे अर्थात् एक साथ पूरी कीमत देकर लेना चाहेंगे, उन्हें प्राथमिकता दी जायेगी। अन्यथा हाउसिंग फाइनेंस सोसायटी की ओर से 65 प्रतिशत लोन लेकर मकान बनाये जायेंगे।

सोसायटी का काम यथासंभव शीघ्र प्रारंभ करना है। इसलिये जो सदस्य बनना चाहें वे एडवांस के रूप में 5351) पाँच हजार तीन सौ इक्यावन रुपये का ड्राफ्ट N.C. Javeri & Others के नाम का बैंक ऑफ इंडिया (सोनगढ़) द्वारा निम्नोक्त पते पर भिजवा दें।

पता :—
नवनीतलाल चुनीलाल जवेरी,
'ओम शांति', सोनगढ़ (सौराष्ट्र)
पिनकोड नं. 364250

विविध समाचार

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)—परमपूज्य स्वामीजी सुख-शांति में विराजमान हैं। सवेरे श्री अष्टपाहुड पर तथा दोपहर को श्री समयसारजी पर स्वामीजी के भाववाही आध्यात्मिक प्रवचन होते हैं। श्री जिनमंदिरजी में जिनेन्द्र पूजा, भक्ति आदि के कार्यक्रम नियमितरूप से चल रहे हैं। बाहर से अनेकों मुमुक्षु पूज्य स्वामीजी के सत्संग का लाभ लेने आते रहते हैं। श्री परमागम मंदिर का निर्माण कार्य सुचारुरूप से चल रहा है। श्री परमागम मंदिर में श्री महावीर भगवान की प्रतिष्ठा का शुभ मुहूर्त फाल्गुन शुक्ला 13 का निकला है। पंच कल्याणक प्रतिष्ठा का विशाल आयोजन हो रहा है; जिसके विस्तृत समाचार अगले अंक में दिये जायेंगे। पूज्य स्वामीजी का विहार करीब 14 दिन के लिये कार्तिक शुक्ला 4 तारीख 30-10-73 को हो रहा है। गुजरात के जांबुडी ग्राम में जैन शिक्षण-शिविर का विशाल आयोजन किया गया है, जो कार्तिक शुक्ला 5 से 13 तक चलेगा। जांबुडी के जिनमंदिर में वेदी-प्रतिष्ठा एवं कलश-ध्वजारोहण कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी को होगा। इस अवसर पर पूज्य स्वामीजी को जांबुडी पधारने हेतु आमंत्रण देने के लिये करीब 50 मुमुक्षुओं का शिष्टमंडल श्री पंडित बाबूभाई फतेपुरवालों के साथ आया था और पूज्य स्वामीजी से जांबुडी पधारने हेतु निवेदन किया था। उनका आमंत्रण स्वीकार करके पूज्य गुरुदेव ने करीब 9 दिन जांबुडी रहने की स्वीकृति दी है।

तलोद स्टेशन (उ. गुज.)—पर्यूषण पर्व में सोनगढ़ के प्रसिद्ध विद्वान श्री खीमचंदभाई हमारे आमंत्रण से पधारे थे। हमेशा तीन चार शास्त्रसभा तथा जिनेन्द्र-अभिषेक-पूजनादि के कार्यक्रम होते थे। श्री खीमचंदभाई के प्रवचन सरल एवं हृदयग्राही थे। नवयुवक और किशोरवय के लोग भी अध्यात्म की बात समझने की जिज्ञासा से प्रत्येक प्रवचन में उपस्थित रहते थे। ऐसा उत्साह, धर्मप्रेम तथा सत्य समझने की जिज्ञासा पहले कभी देखने में नहीं आयी। वीतराग विज्ञान पाठशाला में 300 विद्यार्थी लाभ ले रहे थे; उन्हें माननीय पंडितजी के वरदहस्त से परीक्षा के प्रमाणपत्र बाँटे गये। आभार-विधि हुई थी।

—मुमुक्षु मंडल, तलोद

फतेपुर (गुज.)— स्थानीय विद्वान श्री बाबूभाई महेताजी समग्र गुजरात में धार्मिक चेतना जागृत करने में अग्रणी हैं। उनका प्रतिदिन सात घंटे का धार्मिक कार्यक्रम रहता था। जिनेन्द्रदर्शन, पूजा, सामायिक भाषापाठ, दसलक्षणधर्म पर प्रवचन-भक्ति, सूत्रजी के अतिरिक्त पाठशाला के कार्यक्रम अलग रहते थे।

रणासण— श्री पूनमचंद माणेकचंद गांधी पधारे थे; बड़े सुंदर धार्मिक कार्यक्रम रहे।

जांबुडी— श्री माणिकलाल शाह मुनईवाले पधारे थे। समाज में अच्छा उत्साह था।

हिम्मतनगर (महावीरनगर) श्री ब्रह्मचारी झमकलालजी सोनगढ़ से पधारे थे। आपके प्रवचनादि कार्यक्रमों द्वारा समाज ने अच्छा लाभ लिया।

बेंगलोर—हमारे आमंत्रण पर पंडित दीपचंदजी (इंदौर) पधारे थे। सभी कार्यक्रम अच्छे रहे। खूब धर्मप्रभावना हुई। यहाँ जिनमंदिर, समवसरण मंदिर तथा स्वाध्याय-भवन का निर्माण-कार्य चल रहा है। वीतराग विज्ञान पाठशाला में हिन्दी तथा गुजराती भाई एवं बहिनों ने परीक्षा दी।

नैरोबी (अफ्रीका) यहाँ पर्यूषणपर्व बड़े उल्लासपूर्वक मनाया गया, सभी को बड़ा उत्साह था। सभी मुमुक्षु अपने परिवार सहित समय पर पहुँचते थे। श्री जेठालालजी ने वर्णन 4 पेज में लिखा है, परंतु स्थानाभाव के कारण पूरा नहीं दिया जा सका।

मोंबासा (अफ्रीका) उपरोक्तानुसार समाचार आये हैं, बहुत उत्साह बताया है।

ललितपुर (झांसी-उ.प्र.) आपकी ओर से पंडित श्री उग्रसेनजी (उदयपुर) पधारे थे। आप अच्छे विद्वान हैं। प्रतिदिन तीन बार प्रवचन होते थे। समाज ने अच्छा धर्मलाभ लिया। तीन जगह वीतराग विज्ञान पाठशालाएँ चल रही हैं।

हजारीलाल टडैया तथा श्री धन्यलाल गुढा
अध्यक्ष-दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंडल

उदयपुर (राज.) इंदौर निवासी श्री पंडित प्रकाशचंदजी पांड्या पधारे थे। बड़े ही सरल स्वभावी और योग्यता संपन्न होने से आपके द्वारा समाज ने काफी लाभ लिया। आपके प्रवचन प्रतिदिन तीन बार होते थे।

सोलापुर (महाराष्ट्र) हमारा आमंत्रण स्वीकार करके पंडित श्री कपूरचंदजी

(केसली-सागर) को यहाँ भेजकर हम सबको आभारी बनाया है। जैन सिद्धांत पर सरल भाषा में अपूर्व प्रवचन सुनकर सोलापुर का समाज बहुत संतुष्ट हुआ है। विस्तृत धार्मिक कार्यक्रमों की पत्रिका भेजी है। — श्री आदिनाथ दिगम्बर जैनमंदिर ट्रस्ट, सोलापुर-2

मलकापुर (महाराष्ट्र)—हमारे आमंत्रणानुसार कोटा से पंडित घासीलालजी पधारे थे; प्रतिदिन चार बार धार्मिक कार्यक्रम होते थे। लघु जैनसिद्धांत प्रवेशिका, अष्टपाहुड, मोक्षमार्गप्रकाशक चलाते थे। तारीख 13-7-73 को जयपुर निवासी पंडित श्री हुकमचन्दजी एम.ए. के तीन प्रवचन हुए थे। समाज ने अच्छी तरह लाभ लिया। हम पूज्य स्वामीजी के अत्यंत आभारी हैं।

मलकापुर (महा.) (जि. बुलढाना)—यहाँ तारीख 8-10-73 से तारीख 22-10-73, 15 दिन के लिये जयपुर वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ तथा सोनगढ़ की संस्था एवं ब्रह्मचारी श्री धन्यकुमारजी बेलोकर के नेतृत्व में जैन शिक्षण-शिविर का विशाल आयोजन किया गया और सारे नगर का अच्छा सहयोग था। मुख्य विद्वानों में जयपुर से डॉ. पंडित श्री हुकमचंदजी शास्त्री, विदिशा से पंडितश्री रतनचंदजी शास्त्री, सिवनी से पंडित श्री उत्तमचंदजी, फतेपुर (गुजरात) से विद्वान पंडित श्री बाबूभाई पधारे थे। प्रतिदिन चार घंटा तो प्रवचन होते थे। आगरा निवासी श्री नेमिचंदजी पाटनी भी पधारे थे। प्रवचन में हमेशा 1500 श्रोतागण लाभ लेते थे; बच्चों की कक्षाएँ अलग लगती थीं। प्रौढ़ शिक्षण कक्षाएँ प्रतिदिन दो घंटे चलती थीं। शंका-समाधान का समय भी रखा था। 200 संख्या में स्थानीय विद्यार्थी और बाहर के मिलकर 600 करीब शिक्षार्थी थे; जरा भी विरोध नहीं है; सभी परमप्रेम सहित लाभ रहे रहे हैं। ब्रह्मचारी श्री दीपचंदजी आदि अनेक प्रकार से साधर्मियों को सेवा दे रहे हैं।

कारंजा (महा.)—यहाँ पर्यूषण पर्व पर जयपुर से श्री पंडित हुकमचंदजी विशेष आमंत्रण पर पधारे। यहाँ करीब 600 घर जैनियों के हैं। समाज में धार्मिक रुचि भी है। व्याख्यान सुनने का इतना भारी प्रेम है कि पचासों वर्ष का रिकार्ड तोड़ दिया है। सभी श्रोता समय पर एकत्र होते थे। आपके कार्यक्रम का लाभ समाज ने अच्छी तरह लिया। नवयुवकों ने भी भाग लिया। औरंगाबाद तथा नागपुर से शिविर हेतु आग्रह भरे निमंत्रण श्री पंडित हुकमचंदजी के पास आये हैं। वीरवाड़ी-महावीर ब्रह्मचारी आश्रम में बाहुबली विद्यापीठ में भी श्री पंडित हुकमचंदजी का जैन-जैनेतर समाज ने अपूर्व लाभ लिया। जागृति बढ़ रही है।

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

श्री वीतराग-विज्ञान स्वाध्यायमंदिर विदिशा (म.प्र.) के उद्घाटन समारोह के अवसर पर श्री पूरणचंदजी गोदीका का भाषण

मंगलममय मंगलकरन, वीतराग-विज्ञान।
नमों ताहि जातैं भए, अरहंतादि महान॥

आदरणीय त्यागीवृंद, विद्वन्मंडली, तत्त्वप्रेमी बन्धुओं, माताओ और बहिनों!

आज मुझे इस प्राचीन नगरी विदिशा में नवनिर्मित श्री वीतरागविज्ञान स्वाध्यायमंदिर का उद्घाटन करते हुए बहुत प्रसन्नता हो रही है। इस स्वाध्यायमंदिर में बैठकर धर्मी जीव तत्त्वाभ्यास करेंगे और अपने अज्ञान का नाश करके मोक्षमार्ग का उद्घाटन करेंगे, यही इसका सच्चा उद्घाटन होगा। जीवन में यदि कुछ प्राप्त करने लायक है तो एकमात्र वीतराग-विज्ञान ही है; आराधना करने लायक भी यही वीतराग-विज्ञान है, तथा प्रचार व प्रसार भी यदि किसी का करने लायक है तो मात्र वीतराग-विज्ञान का ही; क्योंकि इसे भूलकर ही आज तक हमने दुःख उठाया है। सुख का एकमात्र साधन वीतराग-विज्ञान ही है। पंडित दौलतरामजी ने कहा है—

तीन लोक में सार, वीतराग-विज्ञानता।
शिव-स्वरूप-शिवकार, नमहुँ त्रियोग सम्हारिकैं॥

सम्यग्ज्ञान की महिमा व्यक्त करते हुए पंडितजी आगे लिखते हैं—

ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारण।
इह परमामृत जन्म-जरा-मृतु राग निवारण॥

ज्ञान के समान जगत में और कोई पदार्थ सुख का कारण नहीं है। यह वीतराग-विज्ञान ही परम अमृत है। यही जन्म-मरण का नाश करनेवाली परम औषधि है। हमें प्रेरणा देते हुए वे लिखते हैं कि करोड़ों उपाय करके भी यह वीतराग-विज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

धन-समाज-गज-बाज-राज तो काज न आवै।
ज्ञान आपकौ रूप भये, फिर अचल रहावै॥
तास ज्ञान कौ कारण, स्वपर विवेक बखानौ।
कोटि उपाय बनाय, भव्य ताको उर आनों॥

आज से करीब 200 वर्ष पहले आचार्यकल्प पंडित टोडरमलजी ने गोम्मटसार, लब्धिसार, क्षपणासार जैसे महान ग्रंथों की टीकाएँ की हैं एवं मोक्षमार्ग प्रकाशक जैसे सरल, सुबोध, ग्रंथ का निर्माण कर और वीतराग-विज्ञान के लिये अपने जीवन का दाव लगाकर हम पर महान महान उपकार किया है। वर्तमान में आचार्य कुन्दकुन्द के परमभक्त गुरुदेवश्री कानजी स्वामी ने उन्हीं के द्वारा लिखित मोक्षमार्ग प्रकाशक के रहस्य को उद्घाटित कर हम पामर प्राणियों पर महान उपकार किया है, अत: वे ही तत्त्व के सच्चे उद्घाटक हैं।

आप लोगों ने अपने में ऐसे वीतराग-विज्ञान के उद्घाटन हेतु इस जिनवाणी के मंदिर का निर्माण किया है और मुझे उद्घाटन का कार्य सौंपा है, सो ऐसे वीतरागमार्ग के साधनभूत जिनवाणी के मंदिर को उद्घाटित कर कौन हर्षित नहीं होगा; परंतु मैं विदिशा जैनसमाज से यह अपेक्षा रखूँगा कि जिस पुनीत उद्देश्य से अदम्य उत्साहपूर्वक और सच्ची लगन से दिन-रात परिश्रम करके आप लोगों ने यह स्वाध्यायमंदिर बनाया है, उसी लगन और उत्साह से इसका सदुपयोग करते हुए अपने उद्देश्य को पूरा करें, अपना श्रम सार्थक करें, अपने बालकों को वीतराग-विज्ञान का बीजारोपण करें। लाभ लेनेवाले हजारों बालकों में से यदि एक-दो बालकों ने भी आत्म-स्वरूप की प्राप्ति कर ली तो वे सिद्धदशा को शीघ्र प्राप्त होंगे, तब हमारा और आपका संपूर्ण श्रम सार्थक हो जायेगा। इस स्वाध्यायमंदिर को केन्द्रबिन्दु बनाकर विदिशा में और विदिशा के आस-पास वीतराग-विज्ञान का गाँव-गाँव में डंका बजा दें।

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का घर-घर होय प्रचार॥

मेरी तो यही उत्कट भावना है। अधिक क्या कहूँ? आप लोगों ने इस पुनीत कार्य को मेरे हाथों से कराया, मुझे यह सुअवसर प्रदान किया, इसके लिए मैं आप सबका आभारी हूँ, आप लोगों को बहुत-बहुत धन्यवाद देता हूँ।

अंत में एकबार पुन: यही भावना व्यक्त करता हूँ कि सब जीव तत्त्वज्ञान प्राप्त कर सच्चे मोक्षमार्ग का और अपने में सच्ची शांति का उद्घाटन करें। तभी यह व्यवहारिक उद्घाटन भी सार्थक होगा।

वीतराग-विज्ञान की जय!

महावीर जयंती की छुट्टी स्वीकृत

30 वर्ष से प्रधानमंत्री हीराचंद जैन श्री महावीर जैनसभा के मांडवला (राजस्थान) भारी प्रयत्न करके 200 स्टेटों में आम छुट्टी स्वीकृत कराई। बाद में भारत स्वतन्त्र होने पर स्टेटे प्रान्तों में विलीन हो गई, तब केन्द्र और प्रान्तों से माँग पर माँग कर आम छुट्टी स्वीकृत कराई। जिनके आर्डर विद्यमान हैं। निम्न प्रान्तों में आम छुट्टी स्वीकृत है—

(1) केन्द्र सरकार दिल्ली (2) बिहार प्रान्त (3) मध्यप्रदेश (4) राजस्थान (5) पंजाब प्रान्त (6) काश्मीर (7) गुजरात प्रान्त।

शेष प्रान्तों से माँग पर माँग कर रहे हैं। जैन संघ से निवेदन है कि इस तरफ ध्यान देकर शेष प्रान्तों से आम छुट्टी की माँग करें।

सोनगढ़ में श्राविकाशाला के कम्पाउण्ड में, नई धर्मशाला के पास मालिकी-स्तर पर दस कमरों की योजना:—

सोनगढ़ आकर पूज्य स्वामीजी के सत्संग का लाभ लेनेवालों के लिये माननीय अध्यक्ष महोदय की स्वीकृति से निवास की निम्नोक्त योजना बनायी गई है:—

नई धर्मशाला के पास, श्राविकाशाला के कम्पाउण्ड में 16'×10' फीट के जिनमें रसोईघर भी शामिल है (पहले बनायी गयी योजनानुसार)—ऐसे दस कमरे बनाये जायेंगे। आगे 4 फीट का बरामदा भी रहेगा। प्रत्येक कमरे का खर्च 4500) साढ़े चार हजार रुपये आयेगा। और उसमें कमरा लेनेवाले स्वयं या उनके कुटुम्बीजन हमेशा रह सकेंगे। अधिक की माँग आयेगी तो उन्हीं कमरों के ऊपर और भी दस कमरे बनाये जायेंगे। निर्माण-कार्य जल्दी कराने की योजना है, ताकि फाल्गुनमास में होनेवाले श्री परमागम मंदिर के पंचकल्याणक-महोत्सव के अवसर पर काम आ सकें। जिन्हें कमरा लेने की इच्छा हो, वे तुरंत ही श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट सोनगढ़ के नाम बैंक आफ इंडिया सोनगढ़ का 2000) दो हजार का ड्राफ्ट एडवांस के रूप में भेज देवें।

पता—

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)-364250

संपादकीय—

वीर निर्वाण का ढाई हजारवाँ महोत्सव आनंदपूर्वक मनायें

आज से भगवान महावीर के निर्वाण का 2500 वाँ वर्ष प्रारंभ हो रहा है और आनेवाली दीपावली पर 2500 वर्ष पूरे होंगे। तब से लेकर वह पूरा वर्ष भगवान महावीर के मोक्षगमन की पावन स्मृतिरूप में समस्त भारत की जैन जनता परस्पर सहयोगपूर्वक आनंद से मनायेगी—यह एक महान कार्य होगा। हमने महावीर के शासन में जन्म लिया और उनकी ढाई हजारवीं निर्वाण-जयंती अपने जीवन-काल में मनाने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ तो ऐसा सुअवसर प्राप्त होने पर समस्त जैन समाज जागृत हो और वीर प्रभु के वीतरागमार्ग को समझकर उसका प्रचार करे, वह प्रशंसनीय है। जयपुर में, फतेपुर में तथा सोनगढ़ में भी तत्संबंधी आशीर्वाद के रूप में पूज्य श्री कानजीस्वामी ने कहा था कि—

"सब जेनों को मिलकर आनंदसहित भगवान के निर्वाण का उत्सव मनाना चाहिये—यह अच्छा है; यह जैनधर्म के प्रसार एवं प्रभावना का कारण है। ऐसे अवसर पर मतभेद भुलाकर सबको साथ देना चाहिये। समस्त जैन सम्प्रदाय मिलकर भगवान महावीर के मार्ग की प्रसिद्धि का कार्य करें, वह करनेयोग्य है। किसी को विरोध नहीं करना चाहिये। परस्पर सहयोगपूर्वक भगवान महावीर के निर्वाण का उत्सव मनायें, वह बड़ी अच्छी बात है। महावीर भगवान के वीतरागमार्ग में क्लेश या विरोध बढ़े-ऐसा किसी को नहीं करना चाहिये। जैनों की संख्या दूसरों की अपेक्षा भले कम हो, परंतु जैनसमाज की शोभा बढ़े और दुनिया में जैनधर्म का प्रभाव फैले, ऐसा प्रयत्न करना चाहिये।"

धार्मिक सिद्धांतों में कुछ भेद होने पर भी समस्त जैन परस्पर सहयोगपूर्वक मैत्रीभाव सहित आनंद से रह सकते हैं। समाज में कहीं बैर-विरोध न हो और जितना हो सके उतना सहयोग देकर भगवान का निर्वाण-महोत्सव सब मिलकर मनायें और उनके बतलाये मोक्षमार्ग को साधकर आत्महित करें, यह प्रशंसनीय है। अपने भगवान का महोत्सव हम नहीं मनायेंगे तो कौन मनायेगा? जिन्हें जैनतत्त्व का ज्ञान नहीं है और भगवान महावीर की वाणी जिन्होंने समझी नहीं है—ऐसे जैनेतरों द्वारा इस उत्सव का नेतृत्व हो—वह हमें अच्छा न लगे, तथा

विदेश में जैनधर्म के प्रचार की बड़ी-बड़ी बातों में हमें रुचि न हो—वह भी ठीक है; विदेशों में प्रचार की या जैनेतरों में धर्मप्रचार की बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनाने की अपेक्षा, अपने भारतदेश के गाँव-गाँव में तथा जैनसमाज के घर-घर में बालक-युवक-वृद्ध सबको धर्म के उत्तम संस्कार प्राप्त हों, समस्त जैनसमाज में परस्पर प्रेम-वात्सल्य का वातावरण बने, अभी तक जिनका समाधान नहीं हुआ, ऐसे तीर्थादि संबंधी विवादों को परस्पर स्नेहपूर्वक हल कर लिया जाये और वीरप्रभु की छाया में शांति एवं समाधानपूर्वक हम सब भगवान के बतलाये मुक्तिमार्ग पर चलें—यह अवश्य करनेयोग्य है और उसमें समस्त जैनसमाज नि:शंकतया एकमत है।

जैन समाज का एक बालक भी तत्त्वज्ञानरहित न हो, जैन देव-गुरु-शास्त्र के सिवा उसे दूसरी ओर आकर्षण न हो और उसका आचरण भी उत्तम जैनधर्म के अनुरूप हो, ऐसे संस्कार फैलाते हुए हमें वीरप्रभु का निर्वाण-महोत्सव अवश्य मनाना चाहिये। समस्त जैन पत्रकारों को दृढ़ निर्णय करना चाहिये कि समाज में कहीं बैर-विरोध बढ़े या किसी व्यक्ति के मन को ठेस पहुँचे—ऐसे कोई लेख प्रकाशित न करें। परस्पर मेल-मिलाप बढ़ाकर सब आनंदपूर्वक एक-दूसरे के निकट आयें और भारतभर में वीर शासन का जय-जयकार करें।

जैनं जयतु शासनम्। जय महावीर! [ब्रह्मचारी हरिलाल जैन]

अरिहंतों का परम सुख

[उसे जानने का फल]

श्री अरिहंत भगवंत परम अतीन्द्रिय सुखी हैं।

क्या तीर्थंकर प्रकृति का उदय होने से वे सुखी हैं ? अथवा समवसरण का संयोग या इंद्रों द्वारा पूज्यता के कारण सुखी हैं ?—नहीं; तीर्थंकर प्रकृति के कारण या समवसरण के संयोग के कारण वे अरिहंत सुखी नहीं हैं (क्योंकि समस्त अरिहंतों को कहीं तीर्थंकर प्रकृति नहीं होती, तथापि वे परम सुखी हैं) वे अपने चैतन्यभाव से ही स्वयमेव सुखी हैं। अतीन्द्रियज्ञानरूप परिणमित होने से वे स्वयंभू-सुखी हैं। और स्वयं ही सुखरूप-सुखी हुए हैं, इसलिये तीर्थंकर प्रकृति के बिना या समवसरणादि के बिना भी सुखी रहते हैं। उनका सुख कर्मोदय के कार्यों से भिन्न ही हैं। उनका सुख कर्मों के उदयजनित नहीं हैं, परंतु कर्मों के क्षयजनित है।

उन अरिहंतों को उस काल उत्तम पुण्यफल विद्यमान भले हो (पुण्यफल अरहंता)—परंतु उनका सुख कहीं उस पुण्यफल के कारण नहीं है। पुण्यफल तो उदयभाव है और अरिहंतों का सुख तो क्षायिकभाव है। ऐसे अरहंतों की सच्ची पहिचान करनेवाले को चैतन्य के अतीन्द्रियसुख का स्वाद आता है।

अरिहंतों के ऐसे अतीन्द्रियसुख की श्रद्धा सम्यग्दृष्टि ही करते हैं।

श्री कुन्दकुन्दस्वामी ने प्रवचनसार की 80 वीं गाथा में कहा है कि—

जो जानता अरहंत को गुण, द्रव्य अरु पर्याय से,
वह जीव जाने आत्म को, तसु मोह नष्ट अवश्य हो।

शांति और क्रोध : अहिंसा और हिंसा—बड़ा कौन ?

- अहिंसा की आयु दीर्घ है, हिंसा की आयु अल्प है।
- क्षमा का जीवन शाश्वत है, क्रोध का जीवन क्षणिक है।
- अहिंसा और क्षमा की शक्ति अपार है, हिंसा और क्रोध की शक्ति अल्प है।
- अहिंसादि वीतरागभाव तो आत्मा के स्वाभाविक भाव हैं, इसलिये आत्मा सदा उनकी अनुभूति कर सकता है; उसमें थकान नहीं लगती।
- हिंसा-क्रोधादि भाव तो विकृत-विषमभाव हैं, इसलिये उन क्रोधादि को कोई सदा नहीं रख सकता, उनमें तो थकान लगती है।
- ज्ञान, क्षमा या शांति कर-करके जीव थक गया हो—ऐसा नहीं होता।
- क्रोध कर-करके जीव अल्पकाल में ही थक जाता है।
- इसप्रकार ज्ञानादि शांतभाव और क्रोधादि अशांतभावों का स्वरूप विचारकर भेदज्ञान करना चाहिये।
- वीतरागी क्षमावंत मुनिवरों के पास चैतन्य की जो महान संपत्ति है, वह कुबेर के पास भी नहीं है।
- पर्यूषण पर्व वह निर्विकारता का पवित्र पर्व है, वह आत्मिक सौन्दर्य का पर्व है।
- चैतन्यरसवान धर्मात्मा जीव शांति के वेदन द्वारा सदा ऐसे पर्यूषण से सुशोभित है।

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)
मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)